अतिरथी

(सव्यसाची)

डॉ० रामदेव त्रिपाठी

शान्ता प्रकाशन

महेन्द्रू, पटना-800 006

अतिरथी

(सव्यसाची)

डॉ० रामदेव त्रिपाठी

पूर्व प्राचार्य, नेतरहाट विद्यालय

प्रकाशक :

शान्ता प्रकाशन

घघाघाट लेन, महेन्द्रू

पटना—८००००६

आमुख

काव्य के अनेक प्रयोजनों में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं— (१) सद्यः पर निर्वृति, अर्थात् अविलम्ब रस-स्वरूप ब्रह्म के आस्वादन का परमानन्द, तथा (२) मानव को राम आदि की भाँति बनना चाहिए, रावण आदि की भाँति नहीं, यह कान्ता-सम्मित उपदेश। तुलसीदास ने "जा के प्रिय न राम बैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही, तज्यो पिता प्रह्लाद बिभीषण बन्धु, भरत महतारी बलि गुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितन भयो मुद मङ्गलकारो' कहकर इसी को स्पष्टतर किया है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में ऊर्मिला का तथा यशोधरा में यशोधरा का चित्रण इस आदर्श का पालन कर लेते हैं। कैकेयी की "भरत से सुत पर भी संदेह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह" की शंका भी ठीक ही है। आखिर इस दुर्घटना के पूर्व तो वह राम को भरत के समान ही प्यार करती थी! प्रेमचन्द की कथा 'ईद', गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि इसी पथ के पथिक हैं। "घर का भेदिया लंका-दाह," का मुहावरा किसी भारतीयता से अपरिचित व्यक्ति की दुर्मति है। किन्तु राष्ट्रकवि दिनकर का रश्मिरथी', केदार नाथ मिश्र प्रभात का 'महारथी कर्ण' तो स्पष्ट ही इस संस्कृति की धारा का अतिक्रमण, वाममार्ग है। माइकेल मधुसूदन दास ने भी 'मेघनाद वध' में यही मुरारि का तीसरा पन्थ अपनाया है। आजकल लोग गान्धी को पूँजीपतियों का चमचा, हरिजन द्वेषी, चन्द्रशेखर आजाद को आतंकवादी, उग्रवादी कहने लगे हैं। ऐसी दृष्टि वाले साम्यवादियों तथा सामाजिक-न्याय धर्मनिरपेक्षता-वादियों को तो दाहिर, दिल्ली-पति पृथ्वीराज, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, वीर छत्रसाल, बाबू कुँअर सिंह, महारानी लक्ष्मीबाई, महर्षि अरविन्द

लोकमान्य तिलक, वीर सावरकर, नेताजी सुभाष बोस, भगत सिंह आदि भारत-भक्त वीर विद्रोही, आतङ्कवादी ही लगेंगे। और आजीवन "रघुपति राघव राजा राम, पतित-पावन सीताराम" की नित्य नियमित प्रार्थना करने वाले मृत्यु क्षण में भी "हे राम" कहकर प्राण त्याग करने वाले, राष्ट्रपिता गान्धी, सोमनाथ मन्दिर बनवाने वाले पटेल, हिन्दू विश्व-विद्यालय बनवाने वाले मालवीय, "हे भारत ! मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्व व्यापी उमानाथ शकर है·······भारत की देव देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बुढ़ापे की काशी है, भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है" का उद्घोष करने वाले स्वामो विवेकानन्द, "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" "वसुधैव कुटुम्बकम्", 'यत्-सर्व-भूत हितमत्यन्तंम् एतत् सत्यं मतं मम", "सियाराम मय सब जग जानी, करौं प्रनाम जोरि जुग पानी" आदि की घोषणा करने वाले वेद, उपनिषद् रामायण, महाभारत, गीता मानस आदि श्रेण्य भारतीय वाङ्मय और वाल्मीकि व्यास, कालिदास, नानक, कबीर, तुलसी आदि राष्ट्र कवि वेदवादी, मनुवादी, ब्राह्मणवादी, संप्रदायवादी ! उनके अनुसार राष्ट्र तो हमें सर्वप्रथम १९४७ में अंग्रेजों ने बनाकर दिया है। नेहरू का पञ्चशील-वाद निःसार था, सारी धरती को एक समझने का आरम्भ तो यूरप और अमेरिका की सुबुद्धि से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अभी हो रहा है ! यह तो साहित्यिक तथा राजनैतिक उन्माद, प्रदूषण, अपराध ही कहा जाएगा ! इन्हीं के प्रतिरोध की धारा में मैंने "धर्मरथी" (विभीषण विजय) तथा "अतिरथी" (सव्यसाची) लिखकर रामायण तथा महाभारत की मूलकथा का संदेश, कान्ता-संमित उपदेश स्पष्टतर किया है।

महाभारत का कोई भी अध्येता सरलता से जान सकता है कि कर्ण उसी श्रेणी का खल है, जिसके कंस, शिशुपाल, दुर्योधन, शकुनि। व्यास ने तो महाभारत युद्ध का प्रधान कारण, प्रतिनायक कर्ण को ही घोषित किया है। जैसे रामायण राम-रावण युद्ध, देवासुर-संग्राम है, वैसे ही महाभारत अर्जुन-कर्ण-युद्ध। वीर तो वह अर्जुन का षोडशांश भी नहीं। वह अनेक

बार अनेक से पराजित होकर युद्धभूमि छोड़ भागा है। द्रौपदी का वस्त्र-हरण कर्ण का ही सुझाव है। सारे कुचक्रों का मूल प्रेरक कर्ण ही है। जैसे रावण मेघनाद और कुम्भकर्ण के तप यज्ञ राजस, तामस, आसुर थे, वैसे ही कर्ण के दान, तप। इनके उद्देश्य गर्हित थे, हिंसा। कर्ण की प्रेरणा थी अर्जुन से ईर्ष्या, द्वेष और कामना थी अर्जुन पर विजय, उसका वध! ऐसे को दानवीर कहना भी दान की महिमा का उपहास है। वह तो था "जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं"। क्या हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, महिषासुर, रक्तबीज तपोधन कहे जायेंगे? आज के अन्तरराष्ट्रीय तस्कर, घोटाला बाज, काला धन वाले, टाटा, बिड़ला? रोगियों, अज्ञानियों, भूखों, नंगों, अनाथों को अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा चिकित्सा से लुभा, डरा अपने संप्रदाय में दीक्षित कर उन्हें विधर्मी, राष्ट्रद्वेषी बनाने वाले लोग दयालु, दानी कहलायेंगे? या बाज को पोस कर उस से चिड़ियों को, कुत्तों को पोस उनसे खरगोशों, हरिणों को पकड़वाने वाले बहेलिये, व्याध?

एक तो मेरी भाषा स्वभावतः संस्कृत-शब्द-प्रधान है, दूसरे रामायण महाभारत काल के पात्रों के मुँह से मुझे अरबी, फारसी, उर्दू, अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग कराने में हिचक होती है। खण्डकाव्य की भाषा वह नहीं होती, जो उपन्यासों, कहानियों, नाटकों, मुहावरों, गीतों की। बाजारू जासूसी, अश्लील सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तकों की भाषा भी बाजारू ही होती है, और दूरदर्शन की भाषा तो डिस्को डान्स होगी ही। पर मेरा कथ्य पूर्णतः भारतीय दृष्टि है, भाषा भले ही अनगढ़ हो।

मेरी सारी रचनाओं की भाँति इसका भी प्रकाशन भैंसागाड़ी की कछुआ चाल से ही हुआ है, आठ वर्षों में ढाई सौ पृष्ठ! यदि यह १९९० में प्रकाशित हो गयी होती, तो इसपर आधा व्यय ही आया होता। दुःख तो यह है कि ऐसी सारी पुस्तकें मित्रों में निःशुल्क बाँट देनी पड़ती है इसलिए न्यूनतम संख्या में प्रकाशित की जाती हैं', अतः व्यय भी बहुत

पड़ जाता है, और वह पूरा दण्ड रचनाकार को अपने रचना-व्यसन का लगता है। हाँ, प्रभावशाली व्यक्तियों की सारी प्रतियाँ प्रशासन खरीद लेता है, परन्तु वह तो काव्य-कला से एक स्तर ऊँची कला है।

हिन्दी मुद्रण में अशुद्धियाँ बढ़ती जा रही हैं, प्रूफ संशोधन का पैसा बचाने के दुष्परिणाम मेंयह सहना पड़ता है। कंपोजिटर कब कौन सा अक्षर कहाँ बैठा देंगे, और ढीले ढाले प्रेस से वह अक्षर कब कहां खिसक जायेगा कहना कठिन है : इस पुस्तक में विराम चिह्नों को छोड़ भी दें तो इतने प्रकार की अशुद्धियां हो गई हैं—

(१) पूरी पंक्ति ही का शब्द-क्रम उलटा-पलटा हो गया है। (२) कोई शब्द छूट गया है, कोई बढ़ गया है। (३) कहीं शब्द का एक वर्ण ही छूट गया है। (४) प्रायः अक्षर के ऊपर के अनुस्वार, चन्द्रविन्दु, रेफ, एकार, ऐकार आदि छूट गये हैं, तथा नीचे के उकार, ऊकार, ऋकार, तथा संयुक्त र। अशुद्धि पत्र दे दिया है, पर जहां छूटे अनुस्वार आदि सरलता से पकड़ में आ जाते हैं, वहां पाठक कृपा कर स्वयं भी समझ लें। (५) ओ का ई या बिपरीत भी बहुत बार हुआ है।

कुछ विरल-प्रयुक्त शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं।

आशा है, इसे पाठक एक बार पूरा पढ़कर मेरा श्रम सार्थक करेंगे, इसमें उनका समय नष्ट नहीं होगा। दूरदर्शन में क्रिकेट का सीरियल देखने, गाना सुनने, ताश शतरंज खेलने, गप्पबाजी करने के समय का थोड़ा अंश काटने पर इसमें भी कुछ मिल ही जाएगा, यदि इतिहास की धारा को, भारत के श्रेण्य वाङ्मय के सारांश को समझने की थोड़ी भी रुचि हो।

यदि कोई अपना मन्तव्य, सुझाव लिख भेजें, तो बड़ी कृपा। "जे पर भनिति सुनत हरषाहीं, ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं"।

—लेखक

संस्कृत उद्धहरण

नारायणं नमस्कृत्य, नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।। १ ।।

(महाभारत का मङ्गलाचरण)

कृष्णं नारायणं वन्दे, कृष्णं वन्दे व्रजप्रियम् ।
कृष्णं द्वैपायनं वन्दे, कृष्णं वन्दे पृथा-सुतम् ।

(भागवत का मङ्गलाचरण)

आत्मा कृष्णस्य पाण्डवः-- वन० १२-४४, वैशम्पायन का कथन ।

नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेक द्विधाकृतम्

उद्योग ४६-००, (भीष्म का दुर्योधन से)

"ममैव त्वं तवैवाहं, ये मदीयास्तवैव ते,
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि, यस्त्वामनु स मामनु ।।
अनन्यः पार्थ ! मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च ।
नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ ।।

(वन पर्व अध्याय १२ श्लोक ४५, ४७, कृष्ण का अर्जुन से)

नर-नारायणौ यौ तौ, तावेवार्जुनकेशवौ —उद्योग-६७-४६

(परशुराम का धृतराष्ट्र से)

यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य

(आदि पर्व १-१७४, धृतराष्ट्र का संजय से)

अक्षौहिण्यो दशैका च, सप्त चैव महाद्युते !
बलेन न समा राजन ! अर्जुनस्य महात्मनः ।।

(भीष्म का युधिष्ठिर से, शान्ति० १५७-१४)

इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन सयुगे योद्धुमर्हति ।
यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्त्तव्यं तस्य भेषजम् ।।

(विराट् ४६-१५, कृप की उक्ति) ।

न स पार्थस्य संग्रामे कलामर्हति षोडशीम्

(वन० ६१-२३ महर्षि लोमश द्वारा इन्द्र का युधिष्ठिर को सन्देश)

हतस्य नरकस्यात्मा कर्णमूर्त्तिमुपाश्रितः,
तद्वैरं संस्मरन् वीर! योत्स्यते केशवार्जुनौ ।।

भीष्म - द्रोण - कृपादींश्च प्रवेक्ष्यन्त्यपरेऽसुराः ।
यैराविष्टा घृणां त्यक्त्वा योत्स्यन्ते तव वैरिभिः ।।
वन २५२-२०, ११-दानवों का दुर्योधन को प्रोत्साहन) ।

यच्च युष्मासु पापं वै धार्त्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान्,
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर् मुखम् ।
(कर्ण पर्व में अध्याय ७३ का ७१; पूरे अध्याय में अर्जुन से कृष्ण का कर्ण के सारे पाप गिनाना) ।

दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर् विरोधे हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य ।।
(कर्ण - ७२-३४, कृष्ण का अर्जुन से) ।

निकृत्योपचरन् वध्य एष धर्मः सनातनः—
वन० १२-७ कृष्ण का सिद्धांत ।

मायाचारो मायया वर्त्तितव्यः—
उद्योग० ३७-७ (विदुर का धृतराष्ट्र से) ।

यतः पार्थस्ततो देवा, यतः कर्णस्ततोऽसुराः
कर्ण ८७-६२, (संजय का धृतराष्ट्र से) ।

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः, शकुनिस्तस्य शाखा ।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे, मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी ।।
युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः स्कन्धोऽर्जुनः भीमसेनोऽस्य शाखा ।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे, मूलं कृष्णो, ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च ।।
(आदि पर्व १-११०, १११)

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्—मनुस्मृति २।९७

संशोधन

पृ०	कविता	अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	कविता	अशुद्ध	शुद्ध
४	१	सत	सुत	६२	१४४	शिव	शिवि
६	६२	वहाँ	०	६२	१४५	ताम्रलिप्रि	ताम्रलिप्ति
११	६४	गण	गुण	६३	१४६	बर्हिगिरि	साथ ही
१८	१८०	सकेत	संकेत	६४	१६२	सभौं को क्या त्याग भय	
२८	३५	शकित	शंकित				सबों का त्याग भय क्या न हो
३२	६१	देन्य	दैन्य	६५	१६६	बुद्ध	क्रुद्ध
३८	६३	चढ़वा	चढ़ा	६६	१७९	समुत	संयुत
४१	११२	रणों	चरणों	६७	१९५	अयुतगज	शत-नगज
४९	४	सुखी	०	७२	२४५	पूरी कविता	०
५१	२६	हृदि	हृदिक	८३	८७	गम्बु	दृगम्बु
५२	३९	मोघ	अमोघ	८५	१०२	कर	करें
५५	६८	ऋषि	ऋषि का	१०४	२२	होंसते हैं	हींसते
५५	७३	क्षात्र	क्षत्र	१०९	४७	द्धव	वृद्ध
५५	७३	सव	सब भूपगण	११२	६२	भटों	०
५५	७३	ठाने	ठान	११६	८३	भुगंग	भजंग
५५	७३	ऐक्ष्राकन	ऐक्ष्वाकव	१३३	१६८	नना	नाना
५५	७४	मगध	मगध के	१३३	१६९	राधन	रोघन
५६	७९	पाण्डभ	पाण्ड्य	१३५	१७६	जले	जब
५६	७८	वरण	शरण	१४०	२०२	कारू	कारूष
५६	८१	वाहनी	वाहिनी	१८४	४९	भाग	भागने
५६	८३	सह	सदृश	२१४	१९६	हार्दिक	हार्दिक्य
५६	८४	संबद्ध	संनद्ध	२२०	५	अर्धोत्थितनु	अर्धोत्थित-तनु
५९	१०९	तट	झट	२३०	५५	करु	कर
६०	१२५	ह्मणों	ब्राह्मणों	२४३	१२२	हो न	न हो

शब्दार्थ

अत्याहित=महाभय।

अपाय=नाश, मृत्यु।

अश्वसेन=वाण के रूप में एक साँप।

आदृत्य=आदरणीय।

आशीबिष=साँप।

उपदा=उपहार।

कानीन=कन्या, अविवाहिता का पुत्र।

कृष्णायस=लोहा।

क्षत्ता=दासीपुत्र, विदुर।

गावलगणि=गवलगण-पुत्र, संजय।

गेहेनर्दी=घर में ही गरजने वाला।

जन्या=बाराती।

जिह्मग=साँप।

तोक=संतान।

नप्ता=नाती।

नाव्य=नाव से पार करने योग्य।

पन्नग=सांप।

परिद्यून=दुःखी, उदास।

प्रत्न=पुराना।

प्रयत=प्रयत्नशील, प्रवृत।

युयुत्सा=युद्ध करने की इच्छा।

रुजा=रोग।

वल्गा=लगाम।

अन्तर्वत्नी=गर्भवती।

अश्व=एक नदी।

अष्टमूर्त्ति=शिव।

आनर्त=द्वारिका।

आहुक=कृष्ण के पितामह, शूरसेन।

कुल्या=पानी भरा गड्ढा, कृत्रिम छोटा जलाशय।

क्षिया=घृणा, क्षय।

गृह्यक=पक्षधर।

जितोज्झित=जीतकर छोड़ दिया गया।

दिष्ट=भाग्य।

नमस्य=प्रणम्य।

नुन्न=प्रेरित।

पत्त्री=वाण।

पिधान=तकिया।

प्रत्यायन=विश्वास दिलाना।

प्रवण=झुका हुआ।

युयुधान=सात्यकि।

विच्छादन=बिछौना।

विष्वक्सेन=विष्णु, चारों ओर सेना-
वाला ।

व्यंसित=वञ्चित, प्रतारित ।

शूक=टूँड़, टूँड़ा ।

सद्यः=तत्क्षण ।

समित=एकत्र हुए, संमिलित ।

स्तनयित्नु=गरजने वाला बादल ।

हार्दिक्य, हृदिक-सुत=कृतवर्मा ।

वृष=कर्ण ।

व्यथापनुद=कष्ट दूर करनेवाला ।

सत्तम=सबसे बड़ा सन्त ।

सभाज्य=आदरणीय ।

सोत्प्रास=मुसकिराता हुआ ।

आचार्य (डॉ०) रामदेव त्रिपाठी : एक परिचय

जन्म :

बिहार राज्य के पूर्वी चम्पारण जिला में अवस्थित गाँव तिवारी टोला (पत्रालय—पकड़ी अशोक, द्वारा—पिपरा कोठी) में २१ जून १९२१ ईसवी को। पिता पंडित श्रीगणेश दत्त शर्मा, व्याकरण-साहित्याचार्य, प्राचार्य, धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय, मोतिहारी। भ्राता पं० वेदप्रकाश त्रिपाठी व्याकरण-साहित्य-वेदान्त—धर्मशास्त्र-आयुर्वेदाचार्य, प्राचार्य धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

शिक्षा :

गुरुकुल पद्धति से अष्टाध्यायी, वेद, उपनिषद् महाभाष्य आदि का अध्ययन। फिर संस्कृत की टोल पद्धति से १९३३ से ४१ तक अध्ययन और व्याकरण-साहित्याचार्य तथा न्यायशास्त्री की उपाधियाँ प्रथम श्रेणी में प्राप्त। फिर आधुनिक (अंग्रेजी) पद्धति से मैट्रिक (१९४३) से एम० ए० (संस्कृत, १९४९) तक की पढ़ाई और प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान। पटना विश्वविद्यालय से १९६४ में हिन्दी में एम० ए० प्रथम श्रेणी तथा बिहार विश्वविद्यालय से १९६७ में डी. लिट्- की उपाधि 'भाषा विज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि' नामक शोध-प्रबन्ध पर।

कार्य :

१९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में सक्रिय योगदान और भूमिगत रहकर चम्पारण में आन्दोलन का संचालन। तीन प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन—(१) अरेराज, सग्रामपुर और मोतीहारी के टोलपद्धति वाले संस्कृत महाविद्यालयों में प्राचार्य तथा व्याकरण-साहित्य के प्राध्यापक, (२) लंगट सिंह महाविद्यालय मुजफ्फरपुर में व्याख्याता और (३) १९५४ से नेतरहाट विद्यालय, नेतरहाट (राँची) में अध्यापक, जहाँ से १९७९ में प्राचार्य के रूप में सेवा-निवृत्त।

सम्प्रति: सम्मानित प्राध्यापक, पटना विश्वविद्यालय (पटना महाविद्यालय) एवं संस्कृत विश्वविद्यालय (राजेन्द्र नगर संस्कृत महाविद्यालय)।

प्रकाशन

भाषा विज्ञान की भारतीय परंपरा और पाणिनि"—मेरा डो. लिट. का शोध-ग्रन्थ। — राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, वर्ष १९७७, पृ० ६३६, मूल्य—४५-००

हिन्दी भाषानुशासन — बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, वर्ष १९८६, पृ० ९७१, मूल्य—१२०-००

हिन्दी भाषा विज्ञान — बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, वर्ष १९९०, पृ० ४३८, मूल्य—५५-००

संस्कृत शिक्षिका — संस्कृत अकादमी, वर्ष १९८८, मूल्य—२५-००

भोजपुरी का संक्षिप्त व्याकरण — भोजपुरी अकादमी, वर्ष १९८७, पृ० ३०७, मूल्य—२५-००

माध्यमिक व्याकरण एवं रचना — निजी प्रकाशन, वर्ष १९८५, मूल्य—२५-००

काव्य

सुमिरन—भोजपुरी फुटकल गीतियाँ — भोजपुरी अकादमी, मूल्य—२५-००

चतुष्पथ– हिन्दी फुटकल कविताएँ — निजी प्रकाशन, वर्ष १९६३, मूल्य—२-००

मनका—फुटकल हिन्दी कविताएँ — निजी प्रकाशन, वर्ष १९८९, मूल्य—२५-००

धर्मरथी (विभीषण विजय) खण्डकाव्य — निजी प्रकाशन, वर्ष १९८१, मूल्य—२५-००

बिहार राज्य पाठ्य पुस्तक प्रकाशन निगम, पटना द्वारा प्रकाशित संस्कृत की तीसरी से लेकर दसवीं कक्षा तक की सभी पाठ्यपुस्तकों का लेखन या समीक्षण।

सव्यसाची
(अतिरथी)
सोपान १
मंगलाचरण

नर नमस्य वह, नारायण ने जिसे बनाया सखा परम।
जो मेरा वह तेरा, जो मैं वह तू, घोषित किया स्वयम् ॥१॥

हरण कराया भगिनी का जिसकी रुचि भाँप प्रसन्न।
तज अग्रज का भी जिसका ले लिया पक्ष प्रच्छन्न ॥२॥

त्याग सुदर्शन, सारथि बन, रथ वल्गा पकड़ चलाया।
तोड़ी जिसके लिए प्रतिज्ञा अपनी, शस्त्र उठाया ॥३॥

झुके उच्चता तज निज, हरने को भूतल का भार।
नर, नारायण ऋषियों ने अवतरण किया स्वीकार ॥४॥

अवनि - सुशासन - हेतु स्वयं अच्युत उपेन्द्र भी वक्र बने।
ऋजुतम अर्जुन वीर पिता से बढ़, धरती के शक्र बने ॥५॥

हैं प्रणम्य [1] नरकारि नरोत्तम - द्वय, नारायण, नर।
त्यक्तशस्त्र विजयी यदुवर, गाण्डीवजयी कुरुवर ॥६॥

हुए धर्म - मर्यादा - संस्थापक दोनों ही वीर।
मिटी धरा की अनुशासन - हीनता प्रजा की पीर ॥७॥

नम्य पुनः देवी सरस्वती, गणपति, मुनिवर व्यास।
जिन से प्रगटा यह जय नामक वेद, काव्य, इतिहास ॥८॥

---

१. कृष्ण ने नरकासुर को मारा था, अतः वे नरक रिपु, नरकान्तक कहलाते हैं, कर्ण भी नरकासुर का अवतार था, जिसे अर्जुन ने मारा था अतः अर्जुन भी नरकारि कहलाएंगे—वनपर्व अध्याय २५२-२०,३४,३५।

प्रस्तावना

कर्ण उसी माँ की था, जिसकी अर्जुन था संतान।
एक हलाहल, नरक; अपर नर निकला सुधा-निधान ॥१॥

परम सुयोग सुसंग भुवन में, चरम कुयोग कुसंग।
स्वाती - जल को त्रिविध बनाते कदली, सीप भुजंग ॥२॥

कटु - कषाय - तिक्ताम्ल तृणों को पय कर देती गाय।
जिह्मग-मुख में पड़ बनता पय विष, अनुपाय अपाय ॥३॥

सूर्य - मयूख रसाल - डाल पर फलता मीठा आम।
पर धतूर - तरु पर धतूर, यह संगति का परिणाम ॥४॥

खरबूजे को देख पकड़ता है खरबूजा रंग।
हुए श्वन्, युवन्, मघवन् सम, बन एक सूत्र के अंग ॥५॥

अधिरथ से पन्नगता, दुर्योधन से मत्सर, दर्प।
तप से वर पा हुआ कर्ण कुण्डल-कवचित मणिसर्प ॥६॥

यज्ञ, दान, तप वे सब राजस, तामस, आसुर तत्त्व।
जिन से उत्सादित, हिंसित हो मानवत्व, देवत्व ॥
तप से ही क्षत्रिय से भी ब्रह्मर्षि बने गाधेय।
तप से ही ब्राह्मण रावण अमनुष्य बना अविनेय ॥७॥

जात-त्यक्त शिशु का जननी पर अन्तर्हित आक्रोश।
बना सोदरों के प्रति प्रतिशोधोत्कट निष्ठुर रोष ॥८॥

बलितम अर्जुन के प्रति उपजा, ईर्ष्या और अमर्ष।
राधा - सुत का बना पृथा - सुत - हनन जीवनादर्श ॥९॥

लगा ढूँढ़ने कर्ण कदिच्छा - पूर्त्ति - हेतु संग्राम।
दुर्योधन की मत्सराग्नि - हित घृत बन आठो याम ॥१०॥

तप कर वह दे दान, मनाता प्रतिकारास्त - विवेक।
अरि के यदि दोनों फूटें, फूटे दृग मेरा एक ॥११॥

ईर्ष्या - तरु दुर्योधन राधा - सुत प्रतिहिंसा - स्कन्ध।
बैठ गया दुर्विधि से लँगड़े के कन्धे पर अन्ध ॥१२॥

साधना वह पाप, पूजा दम्भ,
जिस का लक्ष्य राजस शक्ति, फल अभिमान॥
द्रोह, छल, विश्वासघात सुकर्म वह,
उद्देश्य जिसका विश्व - जन - कल्याण ॥१॥

कनक-कलश गरल भरा, केवल सुधामुख अंगपति था कर्ण;
अर्जुन-शक्र का वह था असुरवर वृत्र।
दान, व्रत, तप स्वर्ण-जल का था चढ़ा अवलेप, कृष्णायस स्वयं
था वह कभी न सुवर्ण, उसका था विरोधी दम्भपूर्ण चरित्र ॥१॥

[1]मन्युमय था दुष्ट दुर्योधन महाद्रुम,
स्कन्ध कर्ण, कितव शकुनि शाखानिचय था॥
फूल फल कटुतिक्त दुःशासन नराधम,
मूल नृप धृतराष्ट्र अमनीषी अनय था ॥१॥

धर्मराज विशाल तरुतरि थे युधिष्ठिर,
स्कन्ध अर्जुन, भीम शाखाएँ प्रसृत थे।
थे नकुल सहदेव रुचिर विटप, कुसुम, फल,
विप्र, ऋषि, सुर, कृष्ण मूल भुवन-विदित थे ॥२॥

---

१. महाभारत, आदि, अनुक्रमणिका १—११०, १११।

सव्यसाची (अतिरथी)

पुरुवंशी कुरु - कुल - महीप थे, महाप्रताप प्रतीप ।
सुत देवापि तथा शान्तनु बाह्लीक हुए कुलदीप ॥१॥

ज्येष्ठ बने देवापि अल्प वय में ही वानप्रस्थ ।
हास्तिनपुर - पति हुए महाभिष शान्तनु ही मध्यस्थ ॥२॥

पत्नी गंगा से जनमे वसु एक एक कर सात ।
किन्तु जात - मृत उन के जल में हुए विसर्जित गात ॥३॥

हुए देवव्रत अष्टम वसु, यद्यपि जी कर अतिवीर ।
स्वर्ग सिधारी पर गंगा, शान्तनु हो गए अधीर ॥४॥

पिता, पुत्र, माता तीनों का हुआ न सह - अस्तित्व ।
निठुर नियति को नहीं किसी का रुचता सर्व - सुखित्व ॥५॥

चेदि - भूप - उपरिचर - औरसी, मत्सी - गर्भ - प्रसूति ।
दाश - पोषिता, जनित - पराशर - स्मरा, सुगन्ध - विभूति ॥६॥

सत्यवती में विधुर पिता हैं मन्मथ - वश अनुरक्त ।
यह सुन उस के पास देवव्रत स्वयं गए पितृ - भक्त ॥७॥

ब्रह्मचर्य का आजीवन व्रत लिया अतीत-विषाद ।
हो निषाद - पति - नप्ता जिस से राजा विगत-विवाद ॥८॥

जनक - हेतु जीवन - वसन्त को स्वयं बनाया ग्रीष्म ।
भीष्म प्रतिज्ञा की, इस से पड़ गया नाम ही भीष्म ॥९॥

पर अनिष्ट कोई करना है जहाँ चाहता दिष्ट।
छिद्र ढूँढ़ कोई अरिष्ट हो जाता वहीं प्रविष्ट ।।१०।।

अविवाहित हो सत्यवती को दे वरदान प्रसन्न।
किया पराशर ने था द्वैपायन निज सुत उत्पन्न ।।११।

उसे बना कर माँ घर लाये धीवरपति से माँग।
ब्याह पिता शान्तनु का करवा दिया स्वयं सब त्याग ।।१२।।

शान्तनु से चित्रांगद और विचित्रवीर्य थे जात।
चित्रांगद गन्धर्वों से लड़ हुए निहत, स्वर्यात ।।१३।।

अम्बालिका, अम्बिका अम्बा काशि-सुताएँ तीन।
निज निज वर वर रहीं नृप-सभा में थीं विभ्रम-लीन ।।१४।।

गंगासुत तीनों को ही हर लाए कर संग्राम।
जीत स्वयंवर-हेतु गए भूपों को वीर-ललाम ।।१५।।

किन्तु विचित्र-वीर्य से परिणय किया नहीं स्वीकार।
ज्येष्ठा अम्बा ने, समझा कर गए देवब्रत हार ।।१६।।

मन में थी वर चुकी शाल्व को, वह मानिनीधुरीण।
इसीलिए कर दिया भीष्म ने उसे तुरत स्वाधीन ।।१७।।

बड़ी अम्बिका, छोटी अम्बालिका रहीं सोत्साह।
इन दोनों से अतः अनुज का मुदित कराया ब्याह ।।१८।।

मरे अपुत्र विचित्रवीर्य क्षय-ग्रस्त वर्ष रह सात।
बंश डूबने को आया कुरु का भारत-विख्यात ।।१९।।

सत्यवती ने कहा—"भीष्म! अब ब्रह्मचर्य है त्याज्य।
अनुज-वधू से कर नियोग सुत जनो, बचा लो राज्य" ।।२०।।

बोले भीष्म—"जननि! तेरे सुत एक और कानीन।
व्रती न वे मुझ से, तेरी आज्ञा के सतत अधीन ।।२१।।

सत्यवती ने स्मरण किया। कह 'अस्तु', आ गए व्यास।
माता की आज्ञा कर ली स्वीकार बिना आयास ॥२२॥

देख जेठ को निज कुरूप अम्बिका हुई पिहिताक्ष।
हुए गर्भ से उस के सुत धृतराष्ट्र अतः प्रज्ञाक्ष ॥२३॥

अम्बालिका पड़ी पीली इस स्थिति से व्रीडित, भीत।
जनमे इस से पाण्डु उदर से उसके आमय-पीत ॥२४॥

संमुख द्वैपायन के पर उपपत्नी थी स्मयमान।
जनमे विदुर अतः उस के सुत, [1]क्षत्ता, धर्म-निधान ॥२५॥

होने से जन्मान्ध न हो धृतराष्ट्र सके अभिषिक्त।
पाण्डु बना नृप गए बिठाए सिंहासन पर रिक्त ॥२६॥

शारीरिक बल में अतुल्य धृतराष्ट्र हुए प्रख्यात।
पाण्डु धनु-विक्रान्त, विदुर थे नीति-शास्त्र-निष्णात ॥२७॥

गान्धारी से आम्बिकेय का किया भीष्म ने व्याह।
और पाण्डु का कुन्ती, माद्री दोनों से सोत्साह ॥२८॥

[2]पारशवी देवक-तनया से हुए विदुर परिणीत।
तीनों का गार्हस्थ्य लगा होने सानन्द व्यतीत ॥२९॥

विश्व-विजय-हित किया पाण्डु ने—जब वे हुए जवान---
रथ, गज, वाजि पदाति चमू ले चतुरंगिणी प्रयाण ॥३०॥

मिथिला, मगध, दशार्ण, सुह्म, पुण्ड्रक, काशी सब जीत।
लौटे बहुराजकता भारत की कर के व्यपनीत ॥३१॥

तज शासन धृतराष्ट्र विदुर पर पाण्डु गए मृगयार्थ।
कुन्ती, माद्री दोनों ने अनुगमन किया सेवार्थ ॥३२॥

किंदम मुनि-दंपति जब थे मृग-मृगी बने रति-लीन।
भ्रमित पाण्डु ने शर से मुनि को तभी किया असु-हीन ॥३३॥

---

१. दासी पुत्र। २. शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न कन्या।

शाप पाण्डु को दिया विहत-रति किंदम ने म्रियमाण।
संग प्रिया के रमण-काल तुम भी होगे निष्प्राण ।।३४।।

सुन कठोर ऋषि-शाप हुए सुत-हीन पाण्डु अवसन्न।
रहती जब आसन्न विपद्, मति होती तिमिराच्छन्न ।।३५।।

कहा पाण्डु ने कुन्ती से हो कुलोच्छेद-भय-म्लान।
"सुत जनमाओ कर नियोग भूसुर से किसी सुजान" ।।३६।।

कुन्ती बोली—"आज बताती एक आप को बात।
नहीं उठा कोई प्रसंग, यह रहा अतः अज्ञात ।।३७।।

बचपन में दुर्वासा ने मेरी सेवा से प्रीत।
दिया अयाचित वर, मैं जिस से हुई उस समय भीत ।।३८।।

एक मन्त्र दे कहा—विपद में होगा यही सहाय।
इष्ट देव के आवाहन का है यह सरल उपाय ।।३९।।

जिस का भी कर स्मरण कभी माँगेगी तू सन्तान।
वह अपने अनुरूप एक सुत देगा तुझे महान् ।।४०।।

इतना ही कह लज्जा, भय से शेष रखा प्रच्छन्न।
जिस के कारण कुरुकुल, भारत दोनों हुए विपन्न ।।४१।।

मन्त्र प्राप्त होते कुन्ती हो गई कौतुकाविष्ट।
ध्यान किया पढ़ मन्त्र, आ गए सूर्य देवता इष्ट ।।४२।।

कहा—"उपस्थित हूँ मैं सुन्दरि! क्या तेरा अभिलाष"?
कुन्ती बोली...."क्षमा करें अपराध, करें विश्वास ।।४३।।

किसी विप्र से पाया मैंने एक भव्य वरदान।
उसे परखने को बस मैंने किया आपका ध्यान ।।४४।।

बिना कार्य के बुला लिया, मुझसे हो गया प्रमाद।
करें न कुछ ऐसा, जिससे हो दोनों का दुर्वाद" ।।४५।।

बोले भास्कर...."जान रहा सब, मुझे न कोई रोष।
निर्भय पाओ सुत मुझ से, कोई न लगेगा दोष ।।४६।।

वृथा बुलाने से ही मुझ को पृथा! लगेगा पाप।
दर्शन मेरा है अमोघ, निरसन होगा अभिशाप ।।४७।।

एक बात है और; हरेंगे हरि धरणी का भार।
पुत्र तुम्हें मुझ से निमित्त इस करना है स्वीकार ॥४८॥

रवि ने दिया कुमारी कुन्ती को भय - लज्जा - सन्न।
आत्मज सहज-कवच - कुण्डल, वसुषेण, शक्ति - सम्पन्न ॥४६॥

दे कन्यात्व पुनः कुन्ती को सविता गए द्युलोक।
बना कुमारी माता का वह भार कनकमय तोक ॥५०॥

पुत्र - स्नेह में मग्न, लोक - मर्यादा से संत्रस्त।
किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ पृथा की मति थी द्विविधा - ग्रस्त ॥५१॥

एक काष्ठ - मञ्जूषा बनवा मृदुविष्टर, सुपिधान।
शिशु को उसमें सुला सुरों का किया अश्रुमय ध्यान ॥५२॥

बोली रो रो...."पुत्रक! तेरा स्वस्ति करें दिननाथ।
अन्तरिक्ष-स्थल-जल-नभ-स्थ सब देव, जोड़ती हाथ ॥५३॥

मंगलमय हो मार्ग, पड़े तुझ पर कोई न कुदृष्टि।
वरुण, पवन, यम, इन्द्र सुरासुर की हो करुणा-वृष्टि ॥५४॥

रहे जहाँ तू, वहीं रहें करते ग्रह-पति प्रतिपाल।
वे ही होंगे धन्य तुम्हें अविराम निहार निहाल ॥५५॥

हाय! न मैं जननी, कोई स्त्री अन्य बनेगी धन्य।
क्षुधित तुझे उल्लसित पिलाएगी जो अपना स्तन्य ॥५६॥

पा तुझ को किस पुण्यवती के भाग उठेंगे जाग?
किसने दिव्य-कवच-कुण्डल-सुत-हेतु किया क्या याग ?॥५७॥

सुमुख, सुकेश, सुदन्त, सुलोचन, विपुल-ललाट सुनास।
तुम्हें जानुधावित देखेगी कौन किलकते पास? ॥५८॥

खेल धूल में लाल चढ़ेगा, तुतला किसकी गोद?
किसके नयन जुड़ाएंगे तेरे आमोद - प्रमोद ?॥५६॥

कर विलाप यों अश्व नदी में दी मंजूषा डाल।
चर्मण्वती नदी में पहुँची, वह बह कर तत्काल ॥६०॥

[1]उससे यमुना में, यमुना से गंगा में गम्भीर।
खिंच तरंग से पहुँची वह सकुशल चंपा के तीर ।।६१।।

अधिरथ था धृतराष्ट्र पक्ष्य नृप, सूत कर रहा वहाँ ध्यान।
पुत्र-हीन उस पति-पत्नी ने ली मंजूषा छान ।।६२।।

दिया दैव ने स्वयं इसे, यह समझ हुए कृतकृत्य।
बढ़ा सुपोषित, कहलाया वसुषेण तरुण-आदृत्य ।।६३।।

मंजूषा के साथ प्रहित चर से यह सब कर ज्ञात।
पृथा न्यूनतरव्यथा हुई, तारकित असित ज्यों रात ।।६४।।

असुत सूत-दंपति सहसा पा उसे हो गए धन्य।
लोक-विदित हो गया सूतसुत द्रुत वह शूरंमन्य ।।६५।।

कुन्ती चर से सदा जानती क्षेम-योग-वृत्तान्त।
नियति दुःख को कर सुखान्त, देती सुख को दुःखान्त" ।।६६।।

मुदित हुए सुन शप्त पाण्डु कुन्ती का यह वरदान।
कहा—"धर्म का करो अभी सुत-हित आवाहन, ध्यान" ।।६७।।

धर्मराज ने स्वयं दिया वर जप से हो आहूत।
हुए युधिष्ठिर प्रथम पाण्डु-सुत उन से ही संभूत ।।६८।।

कहा जन्म के क्षण पुरोहितों ने कर पूर्ण विमर्श।
यह अजातरिपु होगा नृपता, नरता का आदर्श ।।६९।।

किया वायु का पति-निर्दिष्ट फिर कुन्ती ने आह्वान।
उन से जनमे भीम विक्रमी, बलियों में बलवान् ।।७०।।

पाण्डु और कुन्ती ने तप से किया जिष्णु को प्रीत।
उन से अर्जुन जनमे, अतिमानव पराजयातीत ।।७१।।

हुई नभोवाणी—"यह होगा कार्त्तवीर्य सा वीर।
परशुराम सा शूर, स्कन्द सा महेष्वास रणधीर ।।७२।।

तेजस्वी वज्री सा, शूली सा अजय्य विख्यात।
चक्रपाणि सा अभय, प्रकृति-ऋजु दिव्यायुध-निष्णात[2] ।।७३।।

---

१. वन पर्व, अ० ३०८, ३०९
२. आदि पर्व अध्याय १२२ श्लोक ३८ से ४६ तक

दुन्दुभि बजा, सुमन बरसा, कर स्वागत, दे वरदान ।
सुर, महर्षि, गन्धर्व, सबों ने प्रकट किया सम्मान ॥७४॥

माद्री की स्तुति से प्रसन्न प्रकटे अश्विनीकुमार ।
हुए उन्हीं के नकुल, और सहदेव युग्म अवतार ॥७५॥

देवदत्त इन पाँचों को लख शौर्य - शील - सम्पन्न ।
माता, पिता, सुहृद, ऋषि, मुनि रहते थे सभी प्रसन्न ॥७६॥

जिस दिन भीम उदर से कुन्ती के थे हुए प्रसूत ।
हुआ उसी दिन दुर्योधन, गान्धारी - तनय, कपूत ॥७७॥

उस की कर्कश क्रन्दन - ध्वनि सुन हृष्ट हुए क्रव्याद ।
श्वा, शृगाल, खर, गृध्र, काक का गूँजा भीषण नाद ॥७८॥

ज्योतिर्विद बोले अशकुन लख जन्म - मुहूर्त्त विचार
"दहन - हेतु कुल के, भारत के प्रगटा यह अंगार ॥७९॥

सद्यः वध इस का कर कुल का करें देव! कल्याण ।
इस विपत्ति से और नहीं कोई दिखता है त्राण ॥८०॥

दण्ड्य व्यक्ति कुल हेतु, ग्राम-हित कुल, जनपद-हित ग्राम ।
जनपद भी, जो रहता आठो याम राष्ट्र-हित वाम" ॥८१॥

पुत्र - मोह से हुए पिता धृतराष्ट्र परन्तु अशक्त ।
कुलांगार भारत की दुर्विधि से न हुआ वह त्यक्त ॥८२॥

दुर्योधन - समेत सौ सुत गान्धारी के थे शूर ।
किन्तु एक से एक सभी निकले शठ, कपटी, क्रूर ॥८३॥

बाद सबों के हुई सुता दुःशला एक उत्पन्न ।
हुआ समय पर ब्याह जयद्रथ से जिसका निष्पन्न ॥८४॥

एक सौबली - परिचर्या - रत वैश्या थी दिन रात ।
उस के ही सुत थे युयुत्सु दुर्योधन के अनुजात ॥८५॥

एक बार मधु ऋतु में वन - विचरण से कामोन्मत्त ।
किया पाण्डु ने माद्री से संगम हो दैवायत्त ॥८६॥

तत्क्षण उपरत हुए भूप, माद्री अनुताप - विमूढ़ ।
कुन्ती से कह हुई चिता पर पति के वह आरूढ़ ॥८७॥

अस्थि पाण्डु, माद्री की, शिशुओं को ले पाँच अनाथ।
गए हस्तिनापुर वन-मुनि विधवा कुन्ती के साथ ॥८८॥

हुई पाण्डु, माद्री की फिर अन्त्येष्टि सविधि सम्पन्न।
गई विपिन को सत्यवती बहुओं के साथ विपन्न ॥८९॥

पाँचो पाण्डु-तनय; एकोत्तरशत धृतराष्ट्र-कुमार।
बढ़ने लगे पितामह से पा तुल्य प्रशिक्षण, प्यार ॥९०॥

गान्धारी-तनयों से बलितर हुए सभी कौन्तेय।
सभी बाल-स्पर्धाओं में विजयी नित, सदा अजेय ॥९१॥

एक भीम कर देते सब धृतराष्ट्र सुतों को त्रस्त।
जल में डुबा, घसीट भूमि में, तरुओं से कर ध्वस्त ॥९२॥

पवन-तनय में बढ़ता ज्यों ज्यों बल, विक्रम, उत्साह।
दुर्योधन में बद्धमूल त्यों त्यों होती थी डाह ॥९३॥

प्रजा पाण्डवों का करती थी जितना ही गुण-गान।
दुर्योधन का मन होता उतना ही ईर्ष्या-म्लान ॥९४॥

देख प्रजा में पाण्डव-दल के प्रति बढ़ता अनुराग।
दाँत पीसता दुर्योधन, तन में लग जाती आग ॥९५॥

एक बार जल-क्रीड़ा की मन में रख उस ने व्याज।
भ्राताओं का सगे चचेरे वन में जुड़ा समाज ॥९६॥

स्वयं भीम को भोज्य खिलाया, हँस हँस गरल-समेत।
घोर नींद में भीम सो गए, जिस से बने अचेत ॥९७॥

लता-पाश में बाँध उन्हें सरिता में दिया धकेल।
पृथक् पृथक् पाण्डव प्रहृष्ट-मन दूर रहे थे खेल ॥९८॥

सलिलकेलि से लौटे पाण्डव जब माता के पास।
पता वहाँ भी नहीं भीम का पा सब हुए उदास ॥९९॥

बह प्रवाह में सर्प-दंश से भीम हुए विष-मुक्त।
आठ दिनों पर लौटे संशय, कोप, वैर से युक्त ॥१००॥

कही भाइयों से, माता से दुर्योधन की चाल।
विदुर, युधिष्ठिर, ने समझाया—"मौन रखो तत्काल ॥१०१॥

दुर्योधन की यदि समाज में खुल जाएगी पोल।
प्रकृति - कुटिल लेगा तुम से रिपुता अजर्य वह मोल" ॥१०२॥

देख कुमारों को दुर्मद, अविनीत, नियन्त्रण - मुक्त।
शास्त्र-शस्त्र - शिक्षार्थ भीष्म ने कृप को किया नियुक्त ॥१०३॥

कुरु - कुलजों के साथ वृष्णि - अन्धक-यदु-वंश्य कुलीन।
नृप-कुमार कृप की शाला में पढ़ पढ़ हुए प्रवीण ॥१०४॥

ज्यों विशिष्ट शिक्षा पौत्रों की हुई भीष्म को इष्ट
कृप-भगिनी-पति द्रोण स्वयं आ पुर में हुए प्रविष्ट ॥१०५॥

हुए पूर्ण संतुष्ट द्रोण पाकर विशेष सत्कार।
शिष्य बनाना किया भीष्म के पौत्रों को स्वीकार ॥१०६॥

लगे पहुँचने एक एक कर शिक्षार्थी दिन - रात।
मानुष दिव्य अस्त्र शिक्षा में द्रोण हुए विख्यात ॥१०७॥

[1]शिष्य द्रोण, कृप का ही था आधिरथि, कर्ण राधेय।
अर्जुन के प्रति तुरत जलन जिस में जग उठी अमेय ॥१०८॥

शत्रु पाण्डवों का, दुर्योधन का बन प्रबल सहाय।
सदा सोचता कैसे हो उन का अपमान, अपाय ॥१०९॥

कर्ण,[2] शकुनि, दुर्योधन ने विष दिया पुनः अति घोर।
हुआ प्रभावित किन्तु भीम का गात न वज्र - कठोर ॥११०॥

धन्वी[3] अर्जुन हुए सबों में श्रेष्ठ; गदाधर भीम।
कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, :शासन थे व्यथित असीम ॥१११॥

भास - शीर्ष - वेधन में अर्जुन हुए सफल बस एक।
मार ग्राह को ग्रस्त द्रोण की रक्षा की सविवेक ॥११२॥

दिया द्रोण ने अर्जुन को ही अतः ब्रह्मशिर अस्त्र।
कहा---"न साधारण रण में है प्रयोक्तव्य यह शस्त्र ॥११३॥

भरी दग्ध जग को समस्त करने की इस में शक्ति।
वध्य आततायी रिपु इस से प्रबल अमानुष व्यक्ति ॥११४॥

---

१. आदि पर्व—अध्याय १३१ श्लोक ११,१२ तथा वन—३०६-१६,१७,१८

२. १-१२८-४०   ३. १-१३१-१३; १४, २७, ६४, ६५

अब न धनुर्धर क्षिति में कोई होगा तुझ सा[1] अन्य"।
ले साञ्जलि नत अर्जुन ने माना अपने को धन्य ॥११५॥

सुत अश्वत्थामा को गुरु ने दिया विशेष रहस्य।
उसे शील-निधि अर्जुन भी गुरु-सम मानते नमस्य ॥११६॥

देख पार्थ का पर वह भी दिन दिन बढ़ता उत्कर्ष।
दुर्योधन की ओर खिंचा राधेय-तुल्य सामर्ष ॥११७॥

पुत्र-मोह गुरु का, गुरु-सुत का लख अर्जुन-मात्सर्य।
किया धूर्त्त दुर्योधन ने भी उस से सख्य अजर्य ॥११८॥

रंगभूमि तब गई बनाई, विस्तृत प्रेक्षागार।
दिखा सकें सब जहाँ शस्त्र-कौशल निज राज-कुमार ॥११९॥

रहा प्रदर्शन एक एक का वहाँ स्तुत्य, द्रष्टव्य।
किन्तु भीम-दुर्योधन का था गदा-युद्ध अति भव्य ॥१२०॥

किया अन्त में अस्त्र-प्रदर्शन अर्जुन ने आरब्ध।
देख अलौकिक कृति समाज हो गया चमत्कृत, स्तब्ध ॥१२१॥

अग्नि बाण से सिरजा पावक, वारुण इषु से नीर।
चला तीर पार्जन्य मेघ, शर से वायव्य समीर ॥१२२॥

भौम बाण से स्थल, पार्वत से शैल किया उत्पन्न।
अन्तर्धान चला सब के सामने हुए प्रच्छन्न ॥१२३॥

धनुष, गदा, असि तीनों में प्रगटा उन का निपुणत्व।
जय-निनाद से ध्वनित हो गया अर्जुन का विरलत्व ॥१२४॥

वज्रपात सा तभी द्वार पर गूँजा भुज-निःस्वान।
दृष्टि उधर ही घूम गई, खिंच गया सबों का ध्यान ॥१२५॥

किया कर्ण ने रंगभूमि में झंझा-सदृश प्रवेश।
रक्तनेत्र, ज्यों आया कोई ऊर्ध्वश्रृङ्ग नर मेष ॥१२६॥

---

१. १-१३२-२२।

कर प्रणाम सावज्ञ द्रोण, कृप को बोला राधेय ।
"देख पार्थ ! मेरा कौशल, निज को मत समझ अजेय" ।।१२७।।

यह कह उसने दिखा दिए अर्जुन के सब नैपुण्य ।
उदित मुदित दुर्योधन के मुख पर था विजयारुण्य ।।१२८।।

दौड़ कर्ण को आलिङ्गित कर कहा—"महाभुज वीर !
हुआ आज से तेरा मेरा सब धन, राज्य, शरीर" ।।१२९।।

स्वयं करैला तीता, तिस पर मिली नीम की डाल ।
मत्सर से मद जुड़ा बना राधेय भयंकर व्याल ।।१३०।।

अमृत मृत्यु का कारण बनता, हो विष से संसृष्ट ।
शत्रु - गेह में पड़ शुभ ग्रह भी करते सदा अनिष्ट ।।१३१।।

कर देती उत्पन्न परिस्थिति नियति सिरज अभिशाप ।
पुण्य इष्ट जिस का वह भी करने लग जाता पाप ।।१३२।।

थे दोनों कानीन, कर्ण रवि - सुत, पाराशर व्यास ।
किया एक ने नाश, दूसरे ने पर ज्ञान - प्रकाश ।।१३३।।

दुर्योधन से पा प्रोत्साहन और छद्म आकूत ।
किया कर्ण ने द्वन्द्व - युद्ध - हित अर्जुन को आहूत ।।१३४।।

समझ न पाते थे अर्जुन क्यों इसे देख कर, चित्त ।
श्रद्धानत होता बरबस, रण - हेतु न तनिक प्रवृत्त ।।१३५।।

किन्तु विमन बोले—"हाँ, हाँ, लड़ लो, पर होता शोक ।
तुम्हें मार मैं एक वीर को भेजूँगा यमलोक" ।।१३६।।
कहा कर्ण ने---"अबल चलाते रण में वाणी - वाण ।
सब के सम्मुख काट शीर्ष तेरा मैं हरता प्राण ।।१३७।।
इस प्रकार दोनों ही क्रमशः हुए वचन - संरब्ध ।
बँट समाज दो भागों में सुन रहा, खड़ा था स्तब्ध ।।१३८।।
द्रोण, भीष्म, कृप, तीनों गुरुजन थे अर्जुन की ओर ।
धार्त्तराष्ट्र सब घेर कर्ण को थे आनन्द - विभोर ।।१३९।।

कुन्ती ने देखा अभिमुख है कुण्डल - कवचित कर्ण ।
कौंध गया कौमार्य - जनन, मुख हुआ क्रमिक बहुवर्ण ॥१४०॥

वध - हित तत्पर हुए परस्पर दो सोदर अनजान ।
लोक - लाज से चुप माता के विकल हो उठे प्राण ॥१४१॥

पड़ी धर्म - संकट में कुन्ती गिरी लुप्त - चैतन्य ।
रक्त कर्ण भी था उस का, यद्यपि न पी सका स्तन्य ॥१४२॥

मन कहता—"खोलो रहस्य कर के समाज - विद्रोह" ।
किन्तु मनाता था विवेक कर बहुविध ऊहापोह ॥१४३॥

"तथ्य छिपाने से होता है प्रभव कर्ण का छन्न ।
कहने से कुरुवंश, कर्ण दोनों का मान विपन्न ॥१४४॥

नहीं स्वैरिणी के कहलाएँ नाथ पाण्डु, सुत चार ।
क्यों न अकेली सहूँ आन्तरिक यह यातना, प्रहार ॥१४५॥

कर्ण जानने से निज उद्भव होगा नहीं प्रहृष्ट ।
साथ उसी के तीन अन्य भी होंगे गण्य निकृष्ट ॥१४६॥

सत्य - कथन से भी न कर्ण का होगा कुछ उपकार ।
जनन कुमारी माता का माना जाता व्यभिचार ॥१४७॥

और दृष्टि में अपने ही बच्चों के हो मैं भ्रष्ट ।
हाय ! सहूँगी सारा जीवन यह मर्मन्तुद कष्ट ! ॥१४८॥

बना रहे तेरे ही सुत पर जन्म - तिमिर यह नित्य ।
प्राण बचा लो किसी भाँति पर उसके हे आदित्य" ॥१४९॥

कुन्ती को सर्वज्ञ विदुर ने देखा मूर्च्छा - ग्रस्त ।
छिड़क चन्दनोदक करवाया द्रुत सचेत, आश्वस्त ॥१५०॥

बोले कृप—"अर्जुन है कौरव, पाण्डु - पृथा - संजात ।
कहो तुम्हारे कौन पिता, माता, क्या कुल है तात ? ॥१५१॥

तुल्य-शक्ति - कुल से करते रण, सख्य महीप - कुमार ।
जान तुम्हारा प्रभव करेंगे पात्रापात्र - विचार" ॥१५२॥

सुनते ही यह हुआ कर्ण का मुख लज्जा - नत खिन्न ।
दुर्योधन ने किया उसे अभिषेक - सलिल से क्लिन्न ॥१५३॥

बोला वह—"आचार्य ! क्षत्रियों में वरेण्य हैं तीन ।
सेनापति वा शूर वीर अथवा जो उच्च कुलीन ॥१५४॥

यदि अभूप से फाल्गुन को करना न इष्ट संग्राम ।
तो देता मैं अंग कर्ण को; अब ये भूप - ललाम ॥१५५॥

हुआ कर्ण अति मुदित प्राप्त कर छत्र, मुकुट, जयकार ।
कहा---"न भूलूँगा जीवन भर राजन् ! यह उपकार ॥१५६॥

क्या दूँ मैं प्रतिदान, करूँगा जो होगा आदिष्ट" ।
दुर्योधन बोला---"मुझ को चिर-सख्य आप का इष्ट" ॥१५७॥

"ऐसा ही हो" कहा कर्ण ने, फिर तो दोनों मित्र,
हर्षालिङ्गित हुए परस्पर बजे विविध वादित्र ॥१५८॥

मिला केतु को राहु, न अब है जगती का कल्याण ।
सोच विबुध गण यह, दोनों को देख हो गए म्लान ॥१५९॥

तभी यष्टि-कर अधिरथ पहुँचा, रोमांचित, सातंक ।
त्याग धनुष, अभिषिक्त कर्ण नत-शिर हो गया अशंक ॥१६०॥

सारथि कह---"हे पुत्र !", सूँघ मस्तक, लेकर परिरम्भ ।
स्नेह - विमूढ़ लगा बरसाने हृष्ट दृगों से अम्भ ॥१६१॥

स्वेच्छाचार, अनीति देख यह भीम हो गए क्रुद्ध ।
कर न सके वे अब अपना आवेश और अवरुद्ध ॥१६२॥

बोले---"अर्जुन से न द्वन्द्व के सूतपुत्र ! तुम पात्र ।
हाँको रथ-हय, ले प्रतोद, बन उसके सारथि मात्र ॥१६३॥

दुर्योधन है कौन तुम्हें यह देने वाला राज्य ?
स्वयं अभूपति, अनधिकार, अज्येष्ठ, वंश का त्याज्य ॥१६४॥

अंगराज्य के हो कदापि दुःशील न तुम भी योग्य ।
पुरोडाश क्या उपहुताश होता है श्वा का भोग्य ॥१६५॥

अधिक्षिप्त अधिरथ सुत ने सुन परुष भीम की बात।
ले उसाँस देखा रवि को सासूर्य किटकिटा दाँत ॥१६६॥

खड़ा हुआ उठ दुर्योधन मदहस्ती सा आविष्ट।
कहा—"वृकोदर, कथन तुम्हारा है सर्वथा अशिष्ट ॥१६७॥

एक मात्र अभिजन न महत्ता का हो सकता मान।
होती क्षत्रिय की महानता की बल से पहचान ॥१६८॥

और सकुण्डलकवच कर्ण होंगे न अकुल - संभूत।
मृगी - गर्भ से कभी व्याघ्र है देखा गया प्रसूत ?॥१६९॥

मेरी अनुवर्त्तिता, धनुर्बल इनका दो मिल साथ।
अंग-राज्य क्या ? कर सकते पृथ्वी को निखिल सनाथ ॥१७०॥

राज्य - दान का मेरे जो करता हो प्रत्याख्यान।
धनुर्युद्ध में कर्ण कर रहे हैं, उसका आह्वान ॥१७१॥

यह सुनते ही कोलाहल से भरे दिगन्त समस्त।
पकड़ कर्ण का हाथ चला दुर्योधन मत्सर - ग्रस्त ॥१७२॥

दुर्योधन था त्याज्य वंश का और कर्ण था त्यक्त।
हुए परस्पर लोभ और साहस दोनों अनुरक्त ॥१७३॥

अर्जुन के प्रति द्वेष और दुर्योधन के प्रति राग।
देख कर्ण में, उठी युधिष्ठिर में अपशंका जाग ॥१७४॥

कौरव - कुल - कलहानल - हित घृत क्या प्रदिष्ट राधेय।
क्या अर्जुन से भी बढ़ यह हो सकता रथी, अजेय ? ॥१७५॥

द्वन्द्व कर्ण - अर्जुन का केवल नहीं, बात यह स्पष्ट।
तुले पाण्डवों को करने पर धार्त्तराष्ट्र हैं नष्ट ॥१७६॥

अचरज है, धृतराष्ट्र षण्ढवत् निर्विकार है, मौन।
दुर्योधन अंगाधिपत्य देने वाला है कौन ? ॥१७७॥

होता है जा रहा बण्ड सा यह प्रचण्ड, उद्दण्ड।
टुकुर टुकुर चुप ताक रहा बन यह समाज भी षण्ड ॥१७८॥

हैं पितृव्य धृतराष्ट्र प्रभारी, नृप थे मेरे तात।
वे या मैं ही कर सकता अंगाधिपत्य की बात ॥१७९॥

खड़ा कर्ण के पीछे है दुर्योधन सैन्य-समेत।
और राज-पुरुषों में भी आदृत उसका संकेत ॥१८०॥

दुरभिसन्धि लगती दुर्योधन की है कुछ प्रच्छन्न।
सब सुन, सह हम लोगों को दिखना है शान्त, प्रसन्न ॥१८१॥

कर्णार्जुन-रण हो जाएगा कौरव-पाण्डव-युद्ध।
कुशल इसी में है कि द्वन्द्व हो किसी प्रकार निरुद्ध ॥१८२॥

यह गृह-कलि गृहयुद्ध नहीं बन, करे राष्ट्र का नाश।
रक्त-नदी न बहे युव-जन की, करे न जग उपहास ॥१८३॥

क्षमा बड़ी है सदा क्रोध से, और युद्ध से शान्ति।
जन-रक्षा आत्माभिमान से, यहाँ न कोई भ्रान्ति" ॥१८४॥

अभी हस्तिनापुर में दृढ़ था दुर्योधन का पक्ष।
नहीं युधिष्ठिर चाह रहे थे, अतः युद्ध प्रत्यक्ष ॥१८५॥

था न प्रजा का अभी पाण्डवों से पूरा सम्पर्क।
रहे युधिष्ठिर शान्त, दबा मन में सब तर्क, वितर्क ॥१८६॥

फड़क पार्थ-भुज उठे, पड़ा पौरुष था सुनते जाग।
पा न अग्रजों की अनुमति, पर दबी रह गई आग ॥१८७॥

वंशनाश-शंकित अशकुन से देख रंग में भंग।
लौटे घर पाण्डव सहिष्णु कृप, द्रोण, भीष्म के संग ॥१८८॥

टला कलह, उस समय इसी में दिखा राष्ट्र-कल्याण।
किन्तु शाप में हुआ एक दिन परिणत यह वरदान ॥१८९॥
समझ रोग को जिस छोटा टाला जाता उपचार।
वही एक दिन बढ़ बलिष्ठ को भी देता है मार ॥१९०॥
कुरुक्षेत्र था रंग-भूमि का ही उस विस्तृत रूप।
भारत के कट मरे राज-कुल-कलह-हेतु सब भूप ॥१९१॥

रही कर्ण - अर्जुन की आखिर होकर ही मुठभेड़।
निहत हुआ राधेय अन्ततः गाण्डीवी को छेड़ ॥१६२॥

यदि कर्णार्जुन - द्वन्द्व तभी हो जाने देते लोग।
आह! न बढ़ने पाता भारत का दुर्योधन - रोग ॥१६३॥

तभी कर्ण का शिर शर से निज अर्जुन करते छिन्न।
भारत का इतिहास सर्वथा ही तब होता भिन्न ॥१६४॥

सफल चिकित्सा में न हो सके जिसकी गीताकार।
होकर रहा महाभारत, भारत का हाहाकार ॥१६५॥

रंगभूमि में कुटिल हँसी था पर हँस रहा अदृष्ट।
दण्ड कठोर उसे तो भारत को देना था इष्ट ॥१६६॥

कभी हनन में पुण्य, क्षमा में ही लगता है पाप।
वाम दिखाती नियति साँप को रज्जु, रज्जु को साँप ॥१६७॥

और कर्ण ही एक मात्र था नहीं कँटीला झाड़।
प्रजापीड़कों का भारत में उपजा था झंखाड़ ॥१६८॥

दाह्य न था केवल हास्तिनपुर का वन खाण्डव प्रस्थ।
त्राहि त्राहि करता था पूरा भरतखण्ड अस्वस्थ ॥१६९॥

साधु - त्राण खल - वध - हित नर नारायण थे अवतीर्ण।
उन्हें पुनर्निर्माण इष्ट था भारत का इस जीर्ण ॥२००॥

कर्ण - हनन था इष्ट कर्ण मिष शेष खलों को मार।
दैव - वश्य बढ़ने दोनों की अतः न पाई रार ॥२०१॥

धार्त्तराष्ट्र पाण्डव दोनों जब थे कृतास्त्र हो दृप्त।
उनकी अहमहमिका देख थे भारद्वाज (द्रोणाचार्य) सुतृप्त ॥२०२॥

सोचा—"है दक्षिणा - याचना का यह अवसर भव्य।
बनें द्रुपद इन दोनों के ही कोपानल के हव्य" ॥२०३॥

बुला सभी शिष्यों को बोले—"जाओ सब पंचाल।
मेरी गुरु - दक्षिणा चुकाने का आ पहुँचा काल ॥२०४॥

कर आक्रमण, द्रुपद को अभिमुख रण में लड़कर जीत,
करो उपस्थित मेरे सन्मुख जीवित ही निगृहीत" ॥२०५॥

सुनते ही हो रथारूढ़ दौड़े दुर्योधन, कर्ण।
दुःशासन, जलसंध, सुलोचन, विन्द, युयुत्सु, विकर्ण ॥२०६॥

धार्त्तराष्ट्र विक्रमी चुनौती मान इसे सामर्ष।
द्रुपद नगर को रौंद दिखाने को निज - बल - उत्कर्ष ॥२०७॥

कहा द्रोण से तभी ढूँढ़ कर अर्जुन ने एकान्त—
"अर्ध क्रोश ही पर मैं बैठा हूँ सन्नद्ध नितान्त ॥२०८॥

किया कर्ण ने जब से मेरा द्वन्द्व - हेतु आह्वान।
विकल परीक्षा - हेतु तभी से मेरे कार्मुक बाण ॥२०९॥

मिला भाग्य से मुझे दिखाने का निज - शौर्य सुयोग।
आज कर्ण से मेरा अन्तर देखें आ सब लोग ॥२१०॥

मैं उद्यत था तभी, आपका मिला न पर संकेत।
और मुझे गृह - युद्ध, ज्ञाति - क्षय - भय ने किया सचेत ॥२११॥

वश्य कौरवों से कदापि होंगे न वीर पांचाल।
शक्ति - दर्प में फूल बजा लें कितना भी ये गाल ॥२१२॥

हार द्रुपद से जब ये भागेंगे निराश हो म्लान।
तब हम पाण्डव अभय करेंगे पार्षत पर अभियान ॥२१३॥

बांध द्रुपद को लाऊंगा एकाकी सब को जीत।
तभी कौरवों को होगा मेरा बल, वीर्य प्रतीत ॥२१४॥

गोष्पद यह पंचाल, मचा दूँ जग में हा हा नाद।
मेरे अस्त्र अमोघ, आपका अवितथ आशीर्वाद" ॥२१५॥

इधर खड़े थे द्रोण वचन से अर्जुन के आश्वस्त।
प्रतिभट थे कर रहे उधर कौरव - सेना को ध्वस्त ॥२१६॥

निकल पड़े पाञ्चाल वीर ले भल्ल, मुसल, असि, बाण।
तज प्राणों का मोह, बचाने को स्वदेश - सम्मान ॥२१७॥

ठान सृंजयो ने कुरुओं से दिया भयंकर युद्ध।
मची कौरवों में भगदड़ जब हुए द्रुपद अति क्रुद्ध ।।२१८।।

कर्ण, विकर्ण, शकुनि, दुर्योधन व्यथित हुए सब वीर।
पार्षत विचर अलातचक्र सा लगे चलाने तीर ।।२१९।।

क्षत - विक्षत जब हुआ पलायनपर अभिमानी कर्ण[1]।
गुहराते अर्जुन को पहुँचे कौरव ग्लानि - विवर्ण ।।२२०।।

तब उतरे रण में अर्जुन, पाञ्चालों से अत्रस्त।
छोड़ युधिष्ठिर पर गुरु की रक्षा, सेवा आश्वस्त ।।२२१।।

सेनाग्रग थे भीम गदाधर, चक्रपाल माद्रेय।
टूट पड़े पाञ्चालों पर इस भाँति व्यूढ़ कौन्तेय ।।२२२।।

गदा लिए यम - दण्ड - तुल्य बन गए भीम थे काल।
शर बरसाए अर्जुन ने धर रुद्र रूप विकराल ।।२२३।।

लिया पाण्डवों को सृञ्जय पाञ्चालों ने मिल घेर।
पार्थ - प्रभञ्जन ने पर सेना - घन को दिया बिखेर ।।२२४।।

अर्जुन से आ भिड़े साथ तब द्रुपद, सत्यजित वीर।
मर्म बेध दोनों को पर फाल्गुन ने किया अधीर ।।२२५।।

किया सत्यजित को शर-जर्जर युद्ध-विमुख, अति श्रान्त।
रथ पर कूद द्रुपद को पकड़ा असि से कर आक्रान्त ।।२२६।।

रहे ताकते टुकुर टुकुर प्रतिभट विभीत सब हार।
टाँग द्रुपद - गज को अर्जुन - हरि चले शौर्य - अवतार ।।२२७।।

सत्य हुआ गुरु - वचन, मिला सब को प्रत्यक्ष प्रमाण।
था न धनुर्धर जग में कोई अर्जुन का प्रतिमान ।।२२८।।

खड़ा किया सन्मुख ला गुरु के भूप द्रुपद को वश्य।
कहा द्रोण ने—मुझे मिल गई गुरु - दक्षिणा प्रशस्य ।।२२९।।

---

१. आदि पर्व (वही) १३७-२१ से २५

जीत द्रुपद को किया अलौकिक सचमुच तुम ने कर्म ।
विदित हो गया होगा सब को आज तुम्हारा मर्म" ॥२३०॥

साधुवाद गुरु का अर्जुन ने नत शर लिया विनीत ।
देख पराक्रम उसका कौरव हुए संशयित, भीत ॥२३१॥

कहा द्रुपद से गुरु ने—तब तुम थे नृप मैं था सच ही दीन ।
मैं हूँ अब पंचाल भूप, तुम दया-पात्र, सर्वस्व-विहीन ॥२३२॥

कहा तुम्हीं ने था सम से ही निभती जग में मैत्री, प्रीति ।
तज ब्राह्मणता अतः पड़ी अपनानी मुझ को क्षत्रिय-रीति ॥२३३॥

जीत सर्वथा तुम्हें आज मैं देता हूँ लो जीवन - दान ।
अर्धराज्य दे तुम्हें बनाता, देखो अब मैं आत्म - समान ॥२३४॥

ले दक्षिण पंचाल मात्र अब भोगो तुम कांपिल्य नगर ।
मैं उत्तर पंचाल अहिच्छत्रा को बस रखता नृपवर ॥२३५॥

□

१. आदि पर्व १-१३८—१, २ ।

धृति, सत्य, अहिंसा, सौमनस्य, शम, आनृशंस्य;
स्थिरता सहिष्णुता-हेतु प्रजाजन के सभाज्य।
थे ज्येष्ठ एक सौ पाँच भाइयों में सब से
अत एव युधिष्ठिर[1] ने पाया कुरु-यौवराज्य ॥१॥

आचार, शील से बन अजातरिपु, सर्व-सुहृद्
वे शीघ्र यशस्वी हुए पाण्डु से भी बढ़ कर
रथ, खड्ग, गदा-रण सीख भीम संकर्षण से,
हो द्युमत्सेन, बलदेव-समान गये बलधर ॥२॥

असि गदा भल्ल रथ धनुर्युद्ध में पारग कर,
फाल्गुन से बोले द्रोण—"वत्स। अब तेरे सम,
कोई न वीर अतिरथी धनुर्धर जगती में,
तुम हुए सभी के लिए विश्व में अजय, अगम ॥३॥

तत्त्वज्ञ परम थे धनुर्वेद के ऋषि अगस्त्य,
प्रिय शिष्य उन्हीं के थे मेरे गुरु अग्निवेश।
तप से अमोघ ब्रह्मास्त्र लिया जो उस गुरु से,
वह भी मैं हूँ दे चुका तुम्हें अब गुडाकेश ॥४॥

मैं और भीष्म दो ही तेरे प्रतिरथ जग में,
दिखता न तीसरा, अब तप कर होओ अनन्य।
नित जय होने से नाम पड़ेगा जय तेरा,
पाएगा तुम पर विजय कभी कोई न अन्य ॥५॥

हैं कर्ण, न निज सुत अश्वत्थामा ही मुझ से;
लेने के यह ब्रह्मास्त्र बन सके कभी पात्र[1]।
मानव पर है यह अस्त्र कदापि न प्रयोक्तव्य
हो सकती इस से दग्ध निमिष में धरा मात्र ॥६॥

थे रथिश्रेष्ठ धर्मस्थ युधिष्ठिर रण में स्थिर,
बन गये चित्र योद्धा अतिरथ असि-निपुण नकुल।
सहदेव द्रोण से असिविद्या, सुर-गुरु से फिर
पा नीतिशास्त्र दोनों में पारग हुए अतुल ॥७॥

---

१. १ आदि पर्व १३८—१२।

जो गन्धर्वों से भी सौवीर विजित न हुआ
वह फाल्गुन के हाथों संगर में हुआ निहत।
कर सके पाण्डु भी जिसे न विक्रम से अधीन
वह यवनाधिप भी हुआ सहज अर्जुन वशगत ॥८॥

कर 'दत्तामित्र', 'सुमित्र', 'विपुल' को शस्त्र-शस्त
लाये उत्तर को जीत एकरथ धन अनन्त।
जा संग भीम के हरा सहस्रों रथियों को
लड़ कर अर्जुन ने जीती प्राच्य-धरा दिगन्त ॥९॥

कर विश्वविजय इस भाँति पाण्डवों ने पाँचो,
अपना भारत में बढ़ा लिया वैभव, प्रताप।
यह देख भ्रातृजों का विक्रम, उत्साह, तेज
धृतराष्ट्र लगे जलने मन में जम गया[1] पाप ॥१०॥

दे कूट-नीति-पटु सचिव कणिक ने निज संमति,
घी की आहुति-सी और बढ़ाया तृष्णानल।
अनुराग पाण्डवों पर बढ़ता सुन जनता का
कर्त्तव्य-बुद्धि भी लगी डगमगाने प्रति पल ॥११॥

चल पड़ी सभा, चत्वर, गोष्ठी में यही बात,
अब उचित युधिष्ठिर का होना राज्याभिषेक।
हैं सत्य-धर्म-रत गुरु-सेवी वे गुण-निधान,
उन सा न किसी में और प्रजा-पालन-विवेक ॥१२॥

राजा होकर धृतराष्ट्र, भीष्म, गान्धारी का
स्वजनों के तुल्य करेंगे वे पालन पोषण।
इनके न राज्य में कोई भी कर पायेगा,
बलशाली निर्बल का पीड़न, धर्षण, शोषण ॥१३॥

जन्मान्ध हुए धृतराष्ट्र[2] न नृप अभिषिक्त कभी,
कुरुराज पाण्डु के थे वे तो प्रतिनिधि केवल।
लेंगे न भीष्म सिंहासन प्रण कर स्वयं त्यक्त,
राज्याधिकार है प्राप्त युधिष्ठिर को अविकल ॥१४॥

---

१. १ आदि पर्व १३८-२७।
२. १ आदि पर्व १४०-२५।

यह सुन, दुर्योधन, कर्ण,[1] शकुनि, दुःशासन ने
भर कर अमर्ष से की कुमन्त्रणा, दुर्विमर्श।
दुर्योधन ने जा कहा पिता से रो रो कर—
"छिन रहा तात! हम से चिर दिन के लिए हर्ष॥१५॥

हो रहे पाण्डु-सुत सभी लोक-प्रिय बद्धमूल,
सब कहते—"अब द्रुत करो युधिष्ठिर को भूपति।
कुन्ती-माद्री-सुत ताव दे रहे मूँछों पर,
गान्धारी-सुत भोगेंगे दासों की दुर्गति॥१६॥

भेजें माता के साथ वारणावत उनको,
कोई उपाय कर शीघ्र नगर से आप दूर।
फिर तो छल बल से उन्हें नष्ट कर देंगे हम,
चाहे हों वे पाँचो कितने ही वीर, शूर" ॥१७॥

बोले सचिन्त धृतराष्ट्र—"पुत्र मैं भी अविरत
जन-गण-मन को हूँ भाँप रहा, रह सावधान।
वर्धिष्णु, लोकप्रिय देख पाण्डु-तनयों को सब
मैं भी जलता[2] रहता हूँ तेरे ही समान॥१८॥

उत्तराधिकारी बनो तुम्हीं कुरु लक्ष्मी के,
यह मिले तुम्हीं को सिंहासन इसका उपाय।
दिन रात सोचता रहता हूँ मैं भी तुम सा,
दिखते अनेक इसमें पर भीषण अन्तराय॥१९॥

पर सभी ज्ञातियों से करते थे स्नेह पाण्डु,
थी धर्म-परायण की मुझ पर श्रद्धा विशेष।
मेरे चरणों पर वार राज्य-सुख सदा सहा,
मृगया वा तप का व्याज बना वनवास क्लेश॥२०॥

---

१. १-१४०—१, २, २१। २. १-१४१—१६-१९।

जैठा भी मैं जन्मान्ध न बन पाया राजा,
इस से जो थी पीड़ा रहती मेरे मन में।
लगता है उसको दूर पाण्डु करने को ही
नृप बना मुझे थे स्वयं सदा रहते वन में ॥२१॥

थे शस्त्र - शास्त्र - पटु वे राजर्षि भुवन - विश्रुत,
कुल - गुरु कुरु से भी बढ़े, चन्द्र - कुल के ललाम।
अतएव चलाया भक्त प्रजा ने नया गोत्र,
उनके तनयों को 'पाण्डव' नूतन दिया नाम ॥२२॥

गुणवान्, लोक - विख्यात, पराक्रम बलशाली,
वैसे ही उनके धर्मनिष्ठ हैं पाँचो सुत।
जो उन्हें पिता से मिला न्यायतः सिंहासन,
उनसे वह कैसे छीन धर्म से होऊँ च्युत ॥२३॥

सैनिक, अमात्य हैं सभी पाण्डु से भृत, पोषित,
सत्कृत अधिकारी, सांसद्, प्रेम - विजित नागर।
यदि मैं करता हूँ दूर पाण्डवों को पुर से,
होंगे विरोध में खड़े सभी वे, है यह डर ॥२४॥

कुरु - लक्ष्मी के उत्तराधिकारी बनो तुम्हीं,
इस हेतु ढूँढ़ता मैं भी नित कोई उपाय।
भय लगता है पर व्यक्त किसी से करने में,
अपने मन में यह छिपा चोर सा अभिप्राय ॥२५॥

अनुमत न भीष्म, कृप, द्रोण, विदुर का होगा यह,
इस राज - भवन से पाण्डुसुतों का निर्वासन।
सम हैं कुरुओं के लिए पाण्डु के, मेरे सुत,
वे नहीं सहेंगे हम से उनका वित्रासन ॥२६॥

अन्याय हमारा देख ज्ञाति, पुरजन, सैनिक
हो क्रुद्ध संगठित दे न हमें ही कहीं मार।
फल अधिक तोड़ने को आगे न बहुत बढ़ हम
हो जायँ धराशायी, छूटे, टूटे न डार ॥२७॥

दुर्योधन ने तब कहा—"आप अतिशंकी हैं,
मैंने सब को है किया मान, धन से अर्चित।
यदि दूर रहें कुछ दिन आँखों से पाण्डु-तनय,
सेनापति, मन्त्री भी होंगे अनुकूल त्वरित ॥२८॥

तत्काल उन्हें बस मृदु उपाय से किसी हटा,
हास्तिनपुर से, कर दें मेरा पथ निष्कण्टक।
अपने लोगों से भर महत्त्व के सारे पद
भय लोभ दिखा कर मैं दूँगा मुँह सब के ढक ॥२९॥

सब सोच समझ कर हम ने निश्चय किया यही,
मध्यस्थ पितामह कौरव-पाण्डव-हेतु सतत।
अश्वत्थामा हैं मित्र कर्ण-सम ही मेरे,
सुत-वत्सल गुरु हो पाएँगे मुझ से न विरत ॥३०॥

कृप भी न तजेंगे भागिनेय, भगिनीपति को,
क्या विदुर हमारा एकाकी सकते बिगाड़।
इसलिए विवासित करें पाण्डवों को हो दृढ़,
मत काँप आप शंकावश तिल का करें ताड़ ॥३१॥

जो प्राप्त न पैतृक क्रम से वह बल वा छल से,
लेना यदि मान रहे हैं अनुचित कार्य आप।
तब तो राजा के, क्षत्रिय के मख राजसूय
हयमेध, दिग्विजय कहलाएँगे महापाप!" ॥३२॥

कर पुत्र पिता ने दुरभिसन्धि यह आपस में
धन दे लोगों से किया पाण्डवों में प्रचार।
शिवनगर वारणावत में एक लगा मेला,
जिस में आए नट, भट, हय, गज, आयुध अपार ।।३३।।

सुन सुन जन जन से जगी पाण्डुतनयों में रुचि,
जा वहाँ बिताने कुछ दिन, मन बहलाने की।
उत्सुक उनको सुन बुला अम्बिकासुत ने भी
छल से आज्ञा दी उन्हें वहाँ पर जाने की।।३४।।

मुख पर प्रतिबिम्बित ज्येष्ठ तात का मनोभाव
पढ़ हुए युधिष्ठिर तीक्ष्ण-बुद्धि शंकित, दुःखित।
प्रतिवाद-रहित पर गुरुजन के छू चरण हुए
माँ के, अनुजों के साथ वारणावत प्रस्थित ।।३५।।

इस बीच पुरोचन मन्त्री से दुर्योधन ने
ऐसा बनवाया एक वारणावत में घर।
सन, राल, तेल, घी, चर्बी, लाह मिली मिट्टी
केवल जिसकी भीतों में भरी गई छिप कर।।३६।।

वस्तुएँ नृपोचित कुशल शिल्पियों ने सब सज
निर्मित ऐसा कर दिया नगर के निकट भवन।
अपने निवास के लिए देख पाण्डव जिसका
आकृष्ट, मुदित हो करें स्वयं निःशङ्क वरण ।।३७।।

दुर्योधन ने दे दी फिर सीख पुरोचन को—
"ठहरें पाण्डव सब वहीं, करो कुछ ऐसा छल।
दो लगा रात में आग, ठहर कुछ दिन, जब हों
लाक्षागृह में सोये सब, जिससे जायें जल" ।।३८।।

जब लगे सभी जाने पाण्डव हास्तिनपुर से
कुछ दूर गये तब संग नगर के नर-नारी।
लख उन्हें म्लानमुख जनता कहने लगी अभय—
"धृतराष्ट्र हमारे राजा कितने अविचारी ॥३९॥

अन्याय किन्तु सह रहे युधिष्ठिर कैसे यह
जा रहे भीम, अर्जुन भी कैसे विमन, शान्त।
सहदेव नकुल कुन्ती सब नतमुख, देख रहे
अन्याय घोर यह भीष्म मूक बन कर नितान्त?।४०॥

राजर्षि पाण्डु ने हमें पुत्रवत् था पाला
होते ही उनके स्वर्गत पुत्र हुए अनाथ!
धृतराष्ट्र इन्हें यदि संग न अपने रख सकते
तो जाएगी इनके जनता ही स्वयं साथ"॥४१॥

सुन व्यथित प्रजा की बात उन्हें समझा, लौटा
जब पाण्डव आगे बढ़े साथ में लगे विदुर।
सांकेतिक भाषा में दे दिया युधिष्ठिर को
सब भेद वारणावत का, लाक्षागृह का गुर॥४२॥

पुर में प्रविष्ट होते ही पाण्डव पा स्वागत
चारो वर्णों के गये नायकों के घर-घर।
फिर अमृत-गिरा से पूछ कुशल मंगल सब का
जा साथ पुरोचन के अशंकवत् गये ठहर।।४३॥

जब हुए पुरोचन-निर्मापित गृह में प्रविष्ट
सब देख सूँघ छदि भित्ति युधिष्ठिर गए भाँप।
संकेत भीम को बता रहस्य किया सूचित
प्रत्यक्ष दिखा दुर्योधन का प्रच्छन्न पाप॥४४॥

"इस मृत्युपाश में पड़े जान कर भी हम क्यों
अन्यत्र क्यों न चल दें इस क्षण ही इसे त्याग"।
आकूत भीम का ठुकरा यह आँखों से ही
बोले अजातरिपु—"कूटनीति की यह न माँग ॥४५॥

है आज वारणावत सारा यह जान रहा
यह सौध हुआ हम लोगों के ही हित निर्मित।
यदि इसे अकारण छोड़ ठौर लें और कहीं
तो दुर्योधन का छल हो जायेगा सुविदित॥४६॥

फिर वैर ठान प्रत्यक्ष हमारा अविलम्बित
वध गुप्तचरों द्वारा करवा देगा वह खल।
अधिकार, कोश से वञ्चित हम सेना-विहीन
उसके ही हाथों में नृप, सेना, कोश सकल" ॥४७॥

इस भाँति समझ कर भी छल शठ दुर्योधन का
पाण्डव लाक्षागृह में ही करने लगे वास।
मेला-मृगया-मिष घूम विपथ पथ सब जाने
मुँह पर न कभी आई चिन्ता, सन्देह, त्रास॥४८॥

जैसे सोचा—"घर में सुरंग हम खोदें अब"
वैसे आ पहुँचा स्वयं विदुर का खनक गुप्त।
बोला—"चतुर्दशी की रजनी में इसी भवन
यह होगा भस्मीभूत, जलेंगे सभी सुप्त" ॥४९॥

दे दिया पाण्डवों ने तत्क्षण निर्देश उसे
घर में सुरंग-पथ एक बनाने का झटपट।
वह लौट गया चर निपुण काम कर पूरा यह
उस धूर्त्त पुरोचन को भी मिली न कुछ आहट॥५०॥

जब वर्ष बीतने को आ पहुँचा एक, देख,
आश्वस्त पुरोचन हुआ पाण्डवों को प्रहृष्ट।
कृष्णा - चतुर्दशी - निशा आ गई निर्धारित
था विहँस रहा विपरीत पुरोचन का अदृष्ट ।।५१।।

ब्राह्मण - भोजन आयोजित एक हुआ उस दिन
परिजन समेत पहुँचे जिसमें गिरिजन, हरिजन।
षड्रस भोजन से पूर्ण तृप्त सब गये लौट
हो गया पूर्ववत् फिर से लाक्षागृह निर्जन ।।५२।।

मदिरा पी, खो चैतन्य विरोचन था प्रसुप्त
यह देख भीम ने तुरत लगा दी वहाँ आग।
माँ और भाइयों को चारो ले संग चले
घुस कर सुरंग से दीप्त भवन को स्वयं त्याग ।।५३।।

क्षण में लपटें सारे जतुगृह में गई फैल
रोने चिल्लाने लगे सभी प्रतिवेशी जन।
उस अग्निकुण्ड में दहक रहे पर कूद कौन
प्रत्यक्ष मरण का करने जाता स्वयं वरण? ।।५४।।

नियतिवश निषादी एक दूर की भोजन - श्लथ
सोई किशोर तनयों के अपने पाँच साथ।
दिख पड़ी दग्ध, मृत समझ उसे कुन्ती सपुत्र
जनता बरसाने आँसू, मलने लगी हाथ ।।५५।।

छल से जिसने जलवाया पाण्डु सुतों को उस
दुर्योधन को धिक् धिक् कहने करने विलाप।
जब दिखा पुरोचन पापी भी मृतदग्ध वहाँ
कुछ क्षीण प्रजा का हुआ कोप, आक्रोश, ताप ।।५६।।

रोते विसूरते रहे रात भर इधर लोग
तब तक आभ्यन्तर पथ से पाण्डव गये निकल।
चल रातो - रात सुरङ्ग मार्ग से पहुँचे वे
अवहित, सुदूर जंगल में एक विजन, सकुशल ॥५७॥

दुस्तर गङ्गा ज्यों ही सहसा आगे आई
त्यों विदुर - प्रहित मिल गया एक अति पटु धीवर।
कर रहा प्रतीक्षा सा तट पर ले सुदृढ़ नाव
जिसने पहुँचाया गंगा पार इन्हें द्रुततर ॥५८॥

बोला—"क्षत्ता ने आलिङ्गन कर सूँघ शीर्ष
है आप सबों को भेजा आशीर्वाद भव्य।
निज कपटी पापी रिपूओं पर तुम लोग शीघ्र
रण में पाओगे विजय असंशय लोक - श्रव्य" ॥५९॥

इस भांति पार कर नदी, गहन वन में प्रविष्ट
प्रच्छन्न गये बढ़ते ही दक्षिण में पाण्डव।
दिग्भ्रान्त, पिपासा - क्षुधा क्लान्त निद्रापीड़ित
अतिश्रान्त हुए, बढ़ना न लगा आगे सम्भव ॥६०॥

सब को बैठा, जल कहीं ढूँढ़ने गये भीम
पी स्वयं सबों के लिये आ गये ले जब जल।
सबको कुश काँटों पर ही लुठित, सुषुप्त देख
लोकोत्तर - बल भी हुए दैन्य - कातर्य - विकल ॥६१॥

मानुष - भक्षी राक्षस हिडिम्ब ने मनुजगन्ध
पा स्वसा हिडिम्बा को भेजा—"जाओ सत्वर।
मेरे प्रदेश में घुस निर्भय उन सुप्तों का
वध कर लाओ, हम दोनों का हो भोज्य प्रवर" ॥६२॥

आदेश हिडिम्बा पा आई उनके समीप,
देखा देवोपम वीर युवक हैं एक खड़ा।
सौन्दर्य, शूरता का अद्भुत मणि-हेम-योग,
पत्थर सी वह रह गई देखती नैन गड़ा ॥६३॥

भाई की आज्ञा, भय तज कर हो कामातुर
पूछा उसने—"तुम कौन और ये कौन चार?
यह महिला कौन? कहाँ से भटके इस वन में?
सुत-कामा मैं, तुम को वरती सरबस बिसार ॥६४॥

जब तक आ जाए नरभक्षी अग्रज हिडिम्ब
उसके पहले ही चलें साथ हम दूर भाग।
पति बन कर मेरे संग रमण, विचरण करते
देखो निर्भय नित नव निर्झर, गिरि, सर, तडाग" ॥६५॥

अविचलित भीम ने कहा—"पाँच भाई हैं हम,
यह माँ हैं, हम सब भटक रहे विपदा में पड़।
जा सकता तेरे साथ न इनको छोड़ कहीं,
तेरे हिडिम्ब भाई से भी मैं लूँगा लड़" ॥६६॥

आ पहुँचा देख विलम्ब स्वयं तब तक हिडिम्ब,
भिड़ गये द्वन्द्व-रण में दोनों कर वज्र-घोष।
उनके प्रहार-गर्जन-स्वर से जग पड़े सभी,
साहाय्य-हेतु दौड़े चारो भाई सरोष ॥६७॥

पर रोक उन्हें एकल हिडिम्ब को मार गिरा
निज लोक-विलक्षण शक्ति भीम ने दिखलाई।
कर ब्याह भीम से पुत्रैषिणी हिडिम्बा ने
दिन भर विहरण की अनुमति कुन्ती से पाई ॥६८॥

जब प्रथम पाण्डु - नृप - पौत्र घटोत्कच को सँग ले
निज भवन हिडिम्बा गई सास की ले अनुमति।
पाण्डव भी वह वन तज त्रिगर्त, पंचाल, मत्स्य,
कीचक देशों में लगे घूमने अविदित - गति ।।६९।।

मिल गये पितामह व्यास एक दिन उन्हें कहीं,
पद - प्रणत पाण्डवों को दे आशीर्वाद कहा—
"प्रच्छन्न एकचक्रा नगरी जा वास करो,
सम्राट् युधिष्ठिर होंगे, कौरव रक्त बहा" ।।७०।।

धर वेष विप्र का लगे विप्रगृह में रहने
सब मान व्यास का वचन एकचक्रा में जा।
भिक्षार्ध अकेले खिला वृकोदर को पहले
अवशिष्ट अर्ध को बाँट परस्पर पाँचो खा ।।७१।।

ब्राह्मण - कुल में कुहराम एक दिन मचा देख
माता कुन्ती ने पूछा—"क्या है अशुभ बात ?"
ब्राह्मण बोला—"है हुआ वकासुर - हेतु आज
भोजन ले जाने का मुझ पर ही वज्रपात ।।७२।।

नरभक्षक वक के यहाँ एक मानव जाता
ले नित गाड़ी भर अन्न, मांस, मदिरा भोजन।
सब कुछ चट कर वह उस मनुष्य को भी खाता,
नृप वेत्रकीय गृह में रहते हैं मूँद नयन ।।७३।।

सुन कुन्ती ने निज सुत हिडिम्ब-जित को भेजा
वक के समीप उस दिन ले भोजन निर्धारित।
खा सकल भोज्य, कर मल्लयुद्ध, वक को पछाड़
यमधाम पठा कर किया भीम ने जनपद - हित ।।७४।।

उल्लास देख सुन वक का वध पुर में छाया
हो गये शिष्ट उस दिन से शेष सभी राक्षस।
पर चिन्तित हुए युधिष्ठिर मन में यह विचार—
"दुर्योधन तक पहुँचे न भीम का कहीं सुयश ॥७५॥

मृतदग्ध हमें वह समझ शाठ्य तज बैठा है,
सुन हों हिडिम्ब-वक-हनन खड़े उसके न कान।
अतिरिक्त भीम या हलधर के यह दुःसाहस
पाएगा कोई किसी और का नहीं मान ॥७६॥

तब जान हमें जीवित करने लग जायेगा
प्रच्छन्न हमारे वध का सुनियोजित प्रयास।
सब लोग, आ गये हैं भय से उसके वश में,
है उचित अधिक दिन अब न हमारा यहाँ वास" ॥७७॥

तब तक द्विज से यह एक नवागत ज्ञात हुआ—
"हो रहा द्रौपदी-हेतु स्वयंवर है अनुपम।
नृप, विप्र, साधु, नट, मल्ल, वणिक जुट रहे अनिश
बन रहे मंच, सोपान, सभागृह रम्य परम" ॥७८॥

ले माँ की अनुमति धन्यवाद दे गृहपति को
प्रस्थित पाण्डव धर विप्रवेश हो गये त्वरित।
जल-केलि-निरत था सपत्नीक गन्धर्वराज
संध्या में, पथ में देख उन्हें वह हुआ कुपित ॥७९॥

उसने स्वकेलि में समझ पाण्डवों को बाधक
गन्धर्वास्त्रों से माया-संगर दिया ठान।
पर अर्जुन लाये धर्मराज के पास पकड़
आग्नेय अस्त्र से उसे दग्धरथ मृदितमान ॥८०॥

गन्धर्वी कुम्भीनसी युधिष्ठिर से बोली—
'दें प्राणदान मेरे नतमुख पति को कुरुवर'!
आज्ञा पाकर अर्जुन ने अग्रज से उसको
दे अभय दान बन्धन से मुक्त दिया द्रुत कर ॥८१॥

अंगारपर्ण ने कहा–"चित्ररथ मैं अब तक
कहलाता था अपने अद्भुत रथ के कारण।
हो विजित आप से अहंकार तज कर झूठा
अब नाम दग्धरथ नया करूँगा मैं धारण ॥८२॥

है विनय धनंजय! एक आप से मेरी अब
रिपुता तज, अपना मित्र मुझे स्वीकार करें।
कर ग्रहण चाक्षुषी विद्या, गान्धर्वी माया
मुझसे निज ऋण से मेरा कुछ उद्धार करें" ॥८३॥

अर्जुन बोले—"मैत्री सहर्ष स्वीकार मुझे
अभिलषित किन्तु है कभी न गान्धर्वी माया"।
तब कहा चित्ररथ ने—"दे गन्धर्वज हय शत
अग्न्यस्त्र चाहता वीर! आपसे मैं पाया" ॥८४॥

दे आग्नेयास्त्र उसे अर्जुन ने कहा—"अश्व;
मैं लूँगा आवश्यकता मुझे पड़ेगी जब"।
फिर परामर्श से उसके बना पुरोहित निज;
मुनिवर्य धौम्य को चले द्रुपद-जनपद को सब ॥८५॥

पंचाल पहुँच ठहरे कुलाल के घर पाण्डव
द्विज-वेष धरे सर्वत्र बने अज्ञात सतत।
भिक्षान्न मात्र लेते, चीवर धारण करते
स्थण्डिल पर सोते, संयम-तप-अभ्यास-निरत ॥८६॥

हो विजित पार्थ से और द्रोण से अवमानित
थे यज्ञसेन ने कर पुत्रेष्टि लिये दो वर।
"हो सुता एक, जिसका अर्जुन से हो विवाह
सुत एक, द्रोण को मारे जो बन शत्रु प्रखर" ॥८७॥

तेजस्वी धृष्टद्युम्न तनय, कृष्णा तनया,
जनमे जुड़वे बच्चे मुँह माँगा फल पाया।
पर पार्षत के मन में लाक्षागृह - घटना ने
सन्देह याज - याजक वाणी में उपजाया ॥८८॥

कहते हैं—"आशा के विरुद्ध छिप कर आशा
मानव मन में उत्साह जगाती रहती नित'।
थे द्रुपद सोचते—"पाण्डव जैसे महापुरुष
न अकाल - मृत्यु से हो कदापि सकते कवलित" ॥८९॥

प्रच्छन्न किसी वन, अद्रि, वेष में अर्जुन के
अन्वेषण के ही लिये द्रुपद ने किया व्याज।
द्रौपदी - स्वयंवर हेतु बजाया तूर्य, पटह
आ जुड़ा चुनौती सुन, नृप - वीरों का समाज ॥९०॥

दृढ़ चाप द्रुपद ने बनवाया दुर्नम्य एक,
जिसको अर्जुन से भिन्न सके कोई न नवा।
नभ में लटकाया मत्स्य एक, उसके नीचे
अष्टार - चक्र - भ्रमि - यन्त्र दिया तीव्रग चलवा ॥९१॥

कर समारोह इस भाँति सजाया सभा मंच,
आ बैठे अहमहमिका मत्त सब भूप प्रथित।
तब क्षितिपों को एकत्र स्वयंवर - सभा - हेतु
घोषणा सुनाई उच्च द्रुपद ने हो उत्थित ॥९२॥

"ज्या चढ़वा चाप पर यन्त्रविवर के पार पाँच
शर पठा लक्ष्य के वेधन में जो होगा क्षम,
जयमाल गले में डाल वरेगी स्वयं उसे,
मेरी तनया, यदि हो कुलीन वह वीरोत्तम" ॥९३॥

सोमक - नृप - वंश - पुरोहित ने डाली आहुति,
स्वस्त्ययन द्विजों ने किया, लगे बजने बाजे।
उठ एक एक कर लक्ष्य - वेध - हित गये सभी
ज्या भी न चढ़ा पाये व्रीडित लौटे राजे ॥९४॥

बैठे विप्रों के बीच पाण्डवों को पाँचो,
दर्शक - समूह - उपविष्ट कृष्ण ने पहचाना।
द्रौपदी - सक्त मन, विफलमनोरथ, म्लान - बुद्धि,
दुर्योधनादि ने भेद न यह कुछ भी जाना ॥९५॥

जब भग्न - मनोरथ शकुनि - शल्य - कर्णादि हुए
तब द्विज - दीर्घा से उठ कर जिष्णु बढ़े आगे।
फिर एक बटुक को देख धनुष की ओर बढ़े
निद्रा से मानो विप्र क्षत्त्र दोनों जागे ॥९६॥

कोई कहता—"यह इन्द्र - केतु सम आज, युवक
चापल - वश विप्रों का यश, तेज डुबायेगा"।
कोई कहता—"पीनांस सिंहगति, करिकर - भुज
यह व्यूढोरस्क पराक्रम अतुल दिखायेगा" ॥९७॥

होता न आत्म - विश्वास उसे तब उठता क्यों ?
यों बड़े बड़े वीरों को संमुख देख विफल ?
यह तेजस्वी जय मन्त्र शक्ति से पा सकता,
क्या जामदग्न्य से क्षत्रिय हुए न विजित सकल ? ॥९८॥

इसलिए सभी दें आप शुभाशीर्वाद उसे,
जिस से प्रत्यंचा चढ़ा लक्ष्य यह विद्ध करे।
कुछ भी न आत्मबल से असाध्य इस जगती में
यह महोत्साह हिम-शैल-धीर जा सिद्ध करे" ॥९९॥

तब तक परिक्रमा कर कार्मुक की अर्जुन ने
सिर नवा पिनाकी, फिर शार्ङ्गी का किया स्मरण।
राधेय, शाल्व, दुर्योधन, शल्य, सुनीथ, रुक्म,
सब को विवर्ण कर किया चाप पर ज्यारोपण ॥१००॥

डाला भू पर झट पाँच शरों से विद्ध लक्ष्य,
बज उठी तालियाँ जयरव से गूँजा समाज।
पहना दी कृष्णा ने आ श्वेत-सुमन-माला
विस्मित, प्रमुदित, आश्वस्त हुए पंचालराज ॥१०१॥

क्षत्रिय राजागण देख स्वयंवृत कृष्णा से
ब्राह्मण-कुमार को एक हुए परिभूत, क्रुद्ध।
भयभीत द्रुपद पर किया आक्रमण सब ने मिल,
कर कर्ण, शल्य को आगे ठाना विकट युद्ध ॥१०२॥

यह देख पास का पेड़ मरोड़, उखाड़ झाड़
भिड़ गये भीम, अर्जुन ले अपना महेष्वास।
दुर्योधनादि सब भूप हुए इन दोनों का,
तनु-सौष्ठव, विक्रम, तेज देखते ही हताश ॥१०३॥

हो भीमानुज के निशित शरों से विद्ध कर्ण
प्रतियुध्यमान बोला अतिचकित, व्यथित, मूर्च्छित।
"भूदेव! आप हैं कौन? सत्य दें मुझे बता;
मैंने न वीरता ऐसी देखी कभी क्वचित् ॥१०४॥

क्या हैं पिनाकपति आप, मूर्त्त या धनुर्वेद ?
वज्री, शार्ङ्गी, लड़ते मुझ से धर छद्मवेष ?
प्रकुपित मेरे सामने ठहर सकते केवल
बस दो ही प्रतिभट, स्वयं इन्द्र या गुडाकेश" ॥१०५॥

बोले अर्जुन—"मैं नहीं पिनाकी, शार्ङ्गी अथवा धनुर्वेद,
हूँ देव वेद कोई न, एक द्विज बटुक मात्र।
पर पारग दोनों अस्त्रों में मैं, ब्राह्म, ऐन्द्र
या भौम, दिव्य, लो तुम्हें बनाता पत्रि-पात्र" ॥१०६॥

यह देख कृष्ण बोले हलधर से—"पुरुषमान,
कार्मुकधर बटु हैं अर्जुन तात ! अवश्यमेव।
वे पेड़ उखाड़ खड़े निश्चल हैं अभय भीम,
यदि नहीं, आज से तजूँ नाम मैं वासुदेव ॥१०७॥

कृश - तनु अजातरिपु गौर, कमल - लोचन, प्रशान्त
उन्नतनासिक हैं ज्येष्ठ युधिष्ठिर, मूर्त्त विनय।
दो कार्त्तिकेय से वहाँ नकुल सहदेव युगल
पण करता मैं, ये पाँचो पाण्डव निःसंशय ॥१०८॥

संघटित असुर, सुर कितने भी लड़ने आएँ
हैं एक किरीटी उन्हें जीतने में समर्थ।
संभव न जिष्णु की कभी पराजय है रण में,
प्रतिभट सब प्राकृत जन, मत हों उत्त्रान्त व्यर्थ' ॥१०९॥

यह देख आत्म - विश्वास, तेज, धृति, शौर्य, अभय,
अर्जुन का रण से कर्ण हुआ हततेज पृथक्।
उत्क्षिप्त भीम से देख शल्य को भू - पातित
आँखें फाड़े रह गये मुग्ध, विस्मित दर्शक ॥११०॥

ले साथ द्रौपदी को पहुँचे पाँचो भाई,
बोले पुकार—"माँ! आज मिली भिक्षा विराट्"
भीतर से बोली कुन्ती मुदित बिना देखे,
"प्रतिदिन सा तुम सब लो आपस में स्वयं बाँट" ॥१११

"माँ! पहले आ देखो तो" सुन उपहसित वचन,
कुन्ती ने बाहर निकल शीघ्र ज्यों ही देखा।
रणों में नत द्रौपदी वधू पर पड़ी दृष्टि,
खिंच आई मुख पर मुदित एक चिन्ता रेखा ॥११२॥

कर पकड़ वधू का धर्मराज से कहा—'पुत्र,
मुख से मेरे वाणी क्यों यह निकली व्याहत?
कैसे न बहू को लगे पाप बहुभोज्या का,
हो भग्न न मेरा वचन, न उसका नारी-व्रत" ?॥११३॥

सुन धर्मराज ने कहा—"विजित यह अर्जुन से,
कृष्णा होगी उनकी पत्नी, क्यों खिन्न आप?
दो की वह भ्रातृवधू हो, दो की भाभी बन,
सेवा पाँचों की करे, लगेगा कुछ न पाप" ॥११४

अर्जुन बोले—"भैया, विवाह की इच्छा से,
मैंने न स्वयंवर समारोह में किया गमन।
छिप गया आप के साथ देखने को मेला,
पर लक्ष्य-वेध का हो न सका आह्वान सहन ॥११५॥

मैं नहीं मानता, विजय अकेले मेरी यह,
क्या नहीं भीम भैया का इसमें योगदान?
कल्याण कामना क्या न आप की, अनुजों की
थी सुदृढ़ भक्ति भी भरती मुझ में स्वाभिमान ?॥११६॥

जब अविवाहित हैं आप, व्याह मेरा कैसा ?
कर मैं न सकूँगा मर्यादा का कभी हनन।
मैं चक्रवर्त्तिता भी न चाहता वह लेना,
कर सकें न जिसका हम पाँचो भाई सेवन ।।११७।।

हो सकती क्यों न अनेक प्रियों की एक प्रिया,
जैसे होता प्रिय एक प्रियाओं का अनेक।
नर-नारी में दाम्पत्य बन्ध का यह अन्तर,
स्वीकार नहीं कर पाता मेरा तो विवेक ! ।११८।।

हैं उधर एक ही माँ से जनमे सौ भाई,
दो माताओं से जनमे हम हैं इधर पाँच।
यदि कृष्णा एक बने पत्नी हम पाँचों की
तब कभी एकता को न हमारी लगे आँच" ।।११९।।

बोले अजातरिपु—"यदि सहमत हो कृष्णा भी,
तो हो ऐसा ही, माँ का भी रह जाय वचन।
मैं देख रहा, हैं मुदित सभी इस निर्णय से,
यह मौन गया है माना स्वीकृति का लक्षण" ! ।१२०।।

परिचर्चा यह चल रही थी कि आये सहसा,
बलराम, कृष्ण फूआ की करते खोज इधर।
फूआ के तनयों को फूआ को पा जीवित;
सकुशल; मिल सब से फुल्ल हुआ उनका अन्तर ।।१२१।।

निर्णय कर रखने को रहस्य सब गुप्त अभी
निज शिविर लौट आये दोनों वसुदेव-तनय।
तब आये धृष्टद्युम्न ढूँढ़ते भगिनी को,
प्रच्छन्न देख, सुन सब लौटे करते विस्मय ।।१२२।।

संशय - नाशन - हित पठा पुरोहित को नृप ने
पाण्डवों और कुन्ती, कृष्णा को बुलवाया!
उपयम - विधि, जन्या - जेमनार्थ कर समारोह
वाहन अनेक राजोचित सत्वंर भिजवाया ॥१२३॥

संमानित कर परखा आचार, विचार, शील;
हो गये द्रुपद आश्वस्त कि हैं ये पाण्डुतनय।
जामाता अर्जुन को ही पाकर मनोनीत
नृप हर्षमूढ़ थे, हुआ स्वप्न - जागर - संशय ॥१२४॥

पर "मैं न एक, कृष्णा को व्याहेंगे पाँचो",
यह अर्जुन-हठ सुन सन्न रह गये नृप उदास!
पर्यटन - परायण द्वैपायन मुनि इसी बीच,
आ पहुँचे सोमक - राज - भवन में अनायास ॥१२५॥

ले सब का प्रत्युत्थान ससंभ्रम, अभिवादन
पूछा दे आशीर्वाद सबों का क्षेम कुशल।
सुन विकट धर्मसंकट राजा का सुता - हेतु
कर ध्यान बताया—इसमें ही जग का मंगल ॥१२६॥

पाँचो पाण्डव इन्द्रांश, इन्द्र अर्जुन प्रधान,
बलराम अंश हरि के केशव पूर्णावतार।
द्रौपदी स्वर्ग की लक्ष्मी; सब अवतीर्ण हुए,
मिल धरती का हरने को दुसह असुर - भार" ॥१२७॥

यह सुन निर्वृत हो यज्ञसेन ने पाँचो से,
कर दिया सुता का दान मान देकर परिणय।
यह जान कृष्ण ने दिये शिविर से हो प्रहृष्ट
उपदाएँ हय, गज, रथ, भाजन, भूषण मणिमय ॥१२८॥

पर पाण्डुसुतों को जीवित, द्रुपदसुता से वृत
सुन कर्ण, शकुनि, दुर्योधन भर से उठे काँप।
हो क्रुद्ध कोसने विधि को, मूर्ख पुरोचन को,
पाण्डवों और पार्षत को देने लगे शाप ॥१२६॥

पंचालागत निज-निज कटकों में ठहरे नृप,
अन्यान्य जनपदों के, लोगों से यह सुन-सुन।
धिक्-धिक् कहने धृतराष्ट्र, भीष्म को लगे पुनः,
गालियाँ पुरोचन को देने भीषण चुन-चुन ॥१३०॥

राधासुत सौबल, ने कुमन्त्रणा दे अपनी
धृतराष्ट्रसुतों का चित्त किया दूषित विरुद्ध।
दोनों ने संमति दी कि "क्यों नहीं हम छेड़ें,
अनवहित, हीनबल, पाण्डुसुतों से अभी युद्ध ?॥१३१॥

जतुगृह से निकले बिना जले होंगे प्रकुपित,
अधमरा बना छोड़े भुजगों से ही भीषण।
हों एकीभूत न वृष्णि सोमकों से जब तक,
तब तक ही होगा करना इनका सरल हनन" ॥१३२॥

सुन सोमदत्तसुत बोले भूरिश्रवा वीर—
"संभव न पाण्डवों का दिखता मुझ को अपाय।
वे स्वयं वीर, धार्मिक, सोमक-जामाता प्रिय,
फिर मातुलेय, चिरसखा, कृष्ण, यदुपति सहाय ॥१३३॥

अत एव संधि पाण्डवों-कौरवों में करवा,
चाहिये द्वेष तज हमें शान्त हो घर जाना।
नृप अन्य देख परिणाम स्वयंवर का लौटे,
घिर कर न यहाँ हम को पड़ जाये पछताना ॥१३४॥

यह सुन दुर्योधन भय - विमूढ़, अश्वत्थामा,
राधेय, शकुनि के साथ हस्तिनापुर आया।
ले साथ कर्ण को गया पिता के पास आर्त्त,
कर विकृत स्वयंवरघटित सुना रोया, गाया ॥१३५॥

फिर कहा—"विदुर चाचा से जीवित, विजयी सुन
भ्रातृव्य पाण्डवों को है आप हुए प्रसन्न!
मैं तो शंकित यादवों, सोमकों का बल पा
कर दें न हमें आ अर्जुन, भीम अभी विपन्न"! ॥१३६॥

बोले नृप मोहाविष्ट—"न मन का कभी पुत्र,
मैं प्रकट विदुर से करता सच्चा अभिप्राय।
भीतर नित जलता हूँ मैं भी तेरे समान,
तुम ही विनाश का उनके कुछ सोचो उपाय" ॥१३७॥

"दे लोभ द्रुपद के मन्त्री को चर करें भिन्न,
या वहीं पाण्डवों को बस जाने को सहमत।
ईर्ष्या - विभक्त या पाञ्चाली के ही निमित्त,
हास्तिनपुर के प्रति शंकित या हम से अपरत ।,१३८॥

वध एक भीम का ही करवा दें किसी भाँति;
वह शूर, तीक्ष्ण, असहिष्णु; सबों में बलवत्तम।
यदि पृष्ठगोप वह अर्जुन का हो जाय निहत,
अर्जुन के वध में कर्ण कभी हो सकते क्षम" ॥१३९॥

यह परामर्श सुन दुर्योधन का राधासुत
बोला—"न एक भी संभव है इन में उपाय।
हम उन के वध के लिये अभी अभियान करें;
जब तक न मिलें पंचाल, वृष्णि दो अन्तराय" ॥१४०॥

नृप ने दोनों का भय, अदूरदर्शिता देख,
कृप, द्रोण, भीष्म के साथ विदुर को बुलवाया।
"दे राज्य भ्रातृजों को आधा धो लें कलंक,
अब भी लाक्षागृहजन्य"—भीष्म ने समझाया ॥१४१॥

"है वज्रपाणि भी स्वयं न उनको जीत कभी,
ले सकते उनका जो न्यायोचित पित्र्य भाग।
वे एकचित्त, धार्मिक, जनप्रिय, छल-निर्वासित;
बुलवा लें सादर उन्हें, त्याग भय, द्वेष, राग" ॥१४२॥

प्रस्ताव भीष्म का सुन यह जल भुन उठा कर्ण,
बोला—"इस से बढ़कर क्या हो सकता अद्भुत ?
ये अर्थ, मान दोनो से तोषित, सदा पुष्ट,
हैं महाराज के ही न श्रेय के हित प्रस्तुत। ॥१४३॥

रिपु के प्रति ही प्रच्छन्न प्रेम जो रहे पाल,
वे मन्त्र अन्नदाता को देंगे क्यों हितकर ?
नृप को विवेक चाहिये कि वे परखें, समझें,
सचिवों में कौन सुहृद्, ! दुर्हृद्, कपटी, अनुचर ?॥१४४॥

पर दिष्ट प्रबल है, सचिव साधु वा छली रहें
निर्दिष्ट काल तक राज्य भोगता है महीप।
चाहे जितना हो अरि साधन-सम्पन्न, सबल
वह बाल न बाँका कर पाता आ कर समीप ॥१४५॥

तब कहा द्रोण ने—"दुष्ट तुम्हारी नस नस हूँ,
मैं बहुत दिनों से देख, परख, पहचान रहा।
जल रही डाह तेरे मन में अर्जुन के प्रति,
अभ्युदय पाण्डवों का जाता तुम से न सहा ॥१४६॥

आगतिक तुम अङ्ग-नरेश बन गये! समुचित यह!
नृपता से न्याय्य युधिष्ठिर की भी तुम्हें कष्ट!
तुम शत्रु मित्र के मिष दुर्योधन के लगते,
हो रहा संधि से स्वार्थ तुम्हारा स्पष्ट, नष्ट ॥१४७॥

जो कहा भीष्म ने निहित उसी में कुरुकुल-हित,
तुम तो लगते हो मुझे नियति के कुटिल पाश।
है तुम्हे बना कर व्याज चाहती वह करना
कौरवों, पाण्डवों का, भारत का सर्वनाश' ॥१४८॥

यह सुन कर बोले विदुर—"आपके पूर्वज, गुरु
जो संमति देते, वही आप के लिए भव्य।
है दुःख किन्तु कुरु-सत्तम का भी पथ्य वचन
लगता शुश्रूषा - हीन आप को नहीं श्रव्य ॥१४९॥

इन दो नरसिंहों से बढ़ कर है कौन वीर?
या कौन मनीषी, कौन सुहृत्तर, कौन स्वजन?
है जय्य सुरासुर से न जिष्णु, यह सर्वविदित,
किस लिए करेंगे सभी आप से अनृत - कथन ?॥१५०॥

मिट द्रुपद, कृष्ण जायें, न पार्थ को छोड़ेंगे,
जिस ओर रहेंगे कृष्ण, उधर की होगी जय।
दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन सभी अज्ञ,
इनके ही कारण होगा अखिल धरा का क्षय" ॥१५१॥

कुरुपति ने निज सुत के विरुद्ध जब जनमत पाया।
पंचाल विदुर को भेज पाण्डवों को बुलवाया ॥१॥

वे द्रुपद, कृष्ण की ले संमति हास्तिनपुर आये
पौरों ने स्वागत में घर घर में दीप जलाये ॥२॥

नृप ने दे आधा राज्य उन्हें तब खाण्डव प्रस्थ पठाया
कौरवों पाण्डवों को न रखा एकत्र, सुदूर हटाया ॥३॥

गुरुजन का आशीर्वाद पाण्डवों ने ले हो झट प्रस्थित।
खाण्डव को सजकर इन्द्रप्रस्थ सुन्दर कर लिया व्यवस्थित ॥४॥

सोपान ३

पाण्डुसुत जा बसे खाण्डव-प्रस्थ में, राजधानी इन्द्रप्रस्थ बनी नयी।
बने पथ, प्राकार, परिखाएँ, विपणि, सौध, गोपुर, देवगृह, उपवन कई ॥१॥

जो ययाति, नहुष, पुरूरवा आदि की, राज नगरी म्लान थी उजड़ी पड़ी।
वह नये नृप पा युधिष्ठिर को हुई, पूर्व गौरव सहित फिर से उठ खड़ी ॥२॥

सत्यसन्ध, अजातशत्रु, महामना, इन्द्रप्रस्थ-महीप जन-वन्दित हुए।
प्रजापालननिरत कुन्ती, द्रौपदी, भाइयों के साथ रह नन्दित हुए ॥३॥

पृथा-तनय हुए निरापद, मुदित सब सुखी, राज्य भी पैतृक उन्हें अब प्राप्त है।
देख यह बलराम, कृष्ण प्रहृष्ट हो, द्वारका लौटे कि कलह समाप्त है ॥४॥

एक दिन देवर्षि आ पहुँचे वहाँ, स्वयं करते त्रिविध लोक परिक्रमण।
पाण्डवों से पा सविधि सत्कार सब, देख कर एकान्त बोले प्रीतमन ॥५॥

"एक रमणी-श्रेष्ठ, कृष्णा है बनी, धर्मपत्नी आप पाँचों की प्रिया।
हो नहीं सुन्दोपसुन्दतिलोत्तमा-काण्ड सो कोई यहाँ भी विक्रिया ॥६॥

इसलिए कर लें परस्पर कुछ नियम, आप पाँचो स्वयं सोच विचार कर"।
सुमति दे, बनवा नियम नारद गये, उन्हें संभावित विपद से तार कर ॥७॥

'एक के जब साथ रत हो द्रौपदी, दूसरा यदि हो प्रविष्ट उसी समय।
द्रौपदी से, देहली से दूर वह, रहे बारह वर्ष दीर्घ-प्रवासमय" ॥८॥

कर यही पण पाण्डुसुत रहने लगे, एक सा सब द्रौपदी का प्यार पा।
सावधानी-दुर्ग में भी पर नियति, पथ बना लेती नगण्य दरार पा ॥९॥

आटविक कुछ दस्यु ब्राह्मण के किसी, एक दिन भागे चुरा ले गो-निवह।
सव्यसाची की शरण में वह गया, माँग रक्षा की लिए अविलम्ब-सह ॥१०॥

थे जहाँ सोये युधिष्ठिर द्रौपदी, था वहीं संयोगवश गाण्डी भी।
जा उठा लाये वहाँ से पार्थ वह, प्रजापालन हेतु पण भूले तभी ॥११॥

दस्यु को दे दण्ड, गौएँ छीनकर, विप्र को जब सौंप लौटे निज सदन।
कहा अग्रज से कि 'पण मुझ से हुआ भग्न, दें आज्ञा, करूँ पुर का त्यजन"।१२।

धर्मराज व्यथार्त्त बोले—'तोड़ व्रत किया तुमने लोक का कल्याण है।
अनुज का अग्रज-निकेत-प्रवेश भी वैध है, मेरा विवेक प्रमाण है" ॥१३॥

कहा अर्जुन ने—"करें पड़ मोह में तात ! मैं नियम-पालन में न छल।"
सत्य-पालन-हित गुरुजनानुमति ले, वे सबों से मिल गये घर से निकल।१४।

पहुँच कर हरद्वार, रात बिता प्रथम, जब हुए उपविष्ट अर्जुन धो नहा,।
देख अभिमुख एक रमणी को चकित, नाम कुल पूछा, विनत उसने कहा।१५॥

"मैं उलूपी, पन्नगी, कौरव्य की सुता, ऐरावत-कुलीना भामिनी।
देखकर सर्वानवद्य तुम्हें हुई, मदनवश, रति की तनय-हित कामिनी" ॥१६॥

"बद्ध बारह वर्ष रखने के लिए, मैं परिव्रज्या प्रवासित हूँ विवश"।
पार्थ से यह सुन उलूपी ने कहा-"क्या मुझे हत-काम कर लोगे सुयश? ॥१७॥

रोकने को धेनु का अपहरण ही, तोड़ था तुमने दिया वह सत्यव्रत।
याचना ठुकरा सकामा शरणगा के हरोगे प्राण रह कर धर्मरत ?" ॥१८॥

धर्म की गति जान अर्जुन साथ में, नाग-कन्या के गए रह रात भर।
हुआ जिससे इरावान् तनय उसे, पार्थ द्रुत आगे बढ़े निज मार्ग पर ॥१९॥

देख सुन हिमशैल के परिसर गये, पूर्वसागर तीर के मणिपूर तक।
चित्रवाहन-नृप-सुता चित्रांगदा, देख उनको हुई मुग्ध, रही ठिठक ॥२०॥

मान नृप की प्रार्थना, पत्नी उसे बना संग रहे वहाँ कतिपय दिवस।
बभ्रु वाहन सुत हुआ उत्पन्न जब, चले दक्षिण को विपिन चर्या-विवश॥२१॥

आ गये गोकर्ण में भीमावरज, शीघ्र ही कर पंचतीर्थ-परिभ्रमण।
घूम पश्चिम तट अशेष प्रभास में कृष्ण से मिल हो गये कृतकृत्य-मन ॥२२॥

चिरसखा आश्लिष्ट नारायण हुए, स्नेहवश नर से कहा, पूछा कुशल।
रैवतक पर वन-विहार यथेच्छ कर, द्वारका में लौट आये सदलबल ॥२३॥

किया स्वागत पुरजनों ने पार्थ का, सजा गोपुर, राजपथ, बरसा सुमन।
स्नेह-वश व कृष्ण के ही सौध में, लगे करने साथ रह भोजन, शयन ॥२४॥

एक बार बिहार-हेतु सभी गये, रैवतक यदु, भोज, अन्धक, वृष्णि गण।
गीत वादन नृत्य भोजन पान रत, गोप गोपी सब हुए स्मर-विजित मन।२५।

उग्रसेन, हली, निशठ, प्रद्युम्न, गद, साम्ब, सारण, हृदिसुत, सत्यक-तनय
विदूरथ, अक्रूर, उद्धव, बभ्रु, पृथु, चारुदेष्ण सभी हुए कन्दर्पमय ॥२६॥

कृष्ण अर्जुन हाथ में दे हाथ यह, देख लोकोत्सव रहे थे झूम कर।
इसी बीच दिखी सुभद्रा जा रही, संग सखियों के उधर से घूम कर ॥२७॥

पार्थ को शिवसम मदन ने लक्ष्य कर, कुसुम सायक निज अमोघ चला दिया।
चित्त अर्जुन का विमोहित देखकर, कृष्ण ने परिहास हर्षित हो किया।२८॥

ब्रह्मचारी विपिनचर का भी हृदय, मथित मन्मथ से हुआ क्यों आज है ?
कहा अर्जुन ने—'न कहने में मुझे, सखे ! तुम से सत्य लगती लाज है।२९।

जो न रमणीमणि सुभद्रा को यहाँ विचरती उन्मुक्त इस विधि देखकर।
हो मदन-हत-बुद्धि त्रिभुवन में मुझे, दिख रहा ऐसा न कोई आज नर ॥३०॥

मुझे अनुमति ले तुम्हारी वह वरे यदि, बनूं मैं पूर्ण-काम सुखी अभी।
अन्यथा स्मर-मथित भी हो आज से, मैं न उसकी ओर ताकूंगा कभी" ॥३१॥

देख अनुजा पर सखा का प्रेम दृढ़, कृष्ण बोले—"प्रिय मुझे सम्बन्ध यह।
पर स्वयंवर में प्रतिद्वन्द्वी जुड़े, प्रिय-प्रिया का स्नेह पाते हैं न सह ॥३२॥

धर्मराज करें समर्थन यदि, करो प्रेयसी का क्षत्रियोचित तुम हरण।
उधर भेजो दूत, आयोजित करें, इधर हम रैवतक पर पूजन, भ्रमण ॥३३॥

भाँति इस अनुमति मँगा, छल से पठा देव-पूजन-हित सुभद्रा को उधर।
कृष्ण के रथ पर सभी शस्त्रास्त्र ले, पार्थ मृगया-ब्याज से निकले इधर।३४।

ज्यों चली पूजाभवन से यादवी, त्यों तडिद्‌गति से पकड़ उसको लिया।
सव्यसाची ने बिठा रथ में उसे, तीव्रगति से हाँक अश्वों को दिया ॥३५॥

अंगरक्षक सैनिकों ने दौड़कर, सूचना दी, आ जुड़े यादव-युवक।
पकड़ अर्जुन को करें दण्डित अभी, कह रहे थे रक्त दृग सबके चमक।३६॥

लोकनायक कृष्ण बोले—"पार्थ ने यादवों का क्या किया अपमान है?
क्या नहीं गाधर्व-परिणय वा हरण, क्षत्रियों में शसनीय विधान है? ॥३७॥

नृप-सुता, भगिनी सुभद्रा के लिए, कौन है कौन्तेय से बढ़ काम्य वर?
संशयात्मक है स्वयंवर, दान भी; आत्मजा का है अनादर निम्नतर ॥३८॥

जानते तुम लोग हो न उसे अभी, विश्वविदित मोघ उसके बाण हैं।
कौन ठानेगा समर उससे, किसे प्रिय न अपने, सैनिकों के प्राण हैं?।३९॥

बहन की इच्छा बिना जीवित उसे, वीर कोई है कभी सकता न हर।
प्रेम से समझा उन्हें, लौटा हमीं अग्निसाक्षिक दें विवाह सहर्ष कर" ॥४०॥

कृष्ण का मत सुन, विवाह किया बुला, प्रेम से सबने सुभद्रा पार्थ का।
नीति है आदर्श तजकर दूर का, ग्रहण करना वर्त्तमान यथार्थ का ॥४१॥

श्वशुर-गृह में एक वर्ष निवास कर, यादवों से सत्कृतादृत हो सतत।
शेष पुष्कर में बिताकर अवधि वे, लौट खाण्डवप्रस्थ, घर आये तुरत ॥४२॥

चरण छू माँ, अग्रजों के, प्रणत हो अवरजों से गये कृष्णा के निकट।
सौत लाये सुन कुपित उसने कहा—'प्रियतमा वह मैं भुजिष्या हूँ निपट ॥४३॥

प्रेम बन्धन को प्रबल भी पूर्वतर, हाय ! कर देती शिथिल है प्रीति नव।
दोष क्या दूँ-आपको, है नियति ही वाम, दुःसह विदित ही है आत्मभव ?।।४४।।

पर सुभद्रा गोपिका-भूषा पहन, सास को प्रणिपात से कर मुदित-मन।
द्रौपदी के पास जा बोली—"बहन ! आपके ही चरण की ली है शरण" ।।४५।।

देखते ही वह समर्पण, विनय, छवि, द्रौपदी का द्वेष, मान गया पिघल।
प्रिय-प्रिया का, प्रिय सखा की बहन का, किया अभ्युत्थान, स्वागत विधि सकल४६।

कृष्ण खाण्डवप्रस्थ पहुँचे ले कटक, सुन सुभद्रा का हुआ स्वागत उचित।
रत्न, धेनु, गजाश्व, विविध दहेज दे, वृष्णिगण लौटे सभाजित हो मुदित।४७।

साथ अर्जुन के गये रह चिर-सखा, कृष्ण पर आखेट के मिष कुछ दिवस।
जन्म देने का तभी अभिमन्यु को, था सुभद्रा को मिला गौरव, सुयश ।।४८।।

हुआ आकृति, प्रकृति, विक्रम, शौर्य में कृष्ण मातुल-तुल्य शिशु सुन्दर परम।
दिव्य मानुष अस्त्रशस्त्रों को सिखा, किया अर्जुन ने उसे द्रुत आत्म-सम।४९।

द्रौपदी ने पाँच पतियों से जने; पाँच आत्मज पाँच वर्षों में इधर।
सुत युधिष्ठिर का प्रथम प्रतिविन्ध्य तब भीम का सुतसोम जनमा वीरवर ५०।

हुआ श्रुतकर्मा किरीटी का सुभट, शतानीक तनय नकुल का कीर्तिधन।
पाँचवाँ श्रुतसोम था सहदेव का पुत्र, तन थे पाँच, पर था एक मन ।।५१।।

जातकर्मादिक पुरोहित धौम्य ने, किये सबके यथाविधि संस्कार सब।
धनुर्विद्या पा धनंजय से बने वे महारथ शौर्य-पारावार अब ।।५२।।

युधिष्ठिर युवराज करते राज्य थे शान्तनव धृतराष्ट्र से ही पूछ नित।
प्रीति उनके प्रति प्रजा की, धर्म में अचलता उनकी हुई त्रिभुवन-विदित ।।५३।।

कृष्ण अर्जुन गये यमुना-कूल पर, धर्मसुत से ले अनुज्ञा एक दिन।
अन्य थे जल-केलि में रत स्त्री-पुरुष, ये मनन में नियति के पथ के कठिन ।।५४।।

अग्नि ब्राह्मण रूप धर आए तभी, कहा—"भोजन चाहता मैं पेट भर।
तृप्त हूँगा विपिन खाण्डव को जला, विघ्न इसमें डालते हैं इन्द्र पर ॥५५॥

मित्र तक्षक नाग हैं उनके यहाँ, साथ परिजन, जीव आश्रित अन्य हैं।
जब जलाता मैं इसे, वे वृष्टि कर, घोर बन जाते सदैव शरण्य हैं ॥५६॥

व्योम में ही आप दोनों वीरमणि अस्त्र निज बरसा सुखा दें वृष्टि-जल।"
तुष्ट होऊँ शीघ्र ही मैं भस्म कर यह गहन वन साथ जीवों के सकल ॥५७॥

अग्नि ने क्षण में स्मरण कर वरुण से, माँग प्रहरण सोमदत्त सभी लिये।
धनुर्वर गाण्डीव, अक्षय इषुधि दो, रथ कपिध्वज सव्यसाची को दिये ॥५८॥

कृष्ण को भी दी गदा कौमोदकी, चक्र वज्रोपम सुदर्शन अति प्रखर।
राख में पन्द्रह दिनों में मिल गया घोर वह बन कुछ सके मघवा न कर।५९।

पूर्व ही वन-दाह के तक्षक किसी कार्य से था कुरुक्षेत्र गया चला।
तक्षकात्मज अश्वसेन छिपा कहीं निकल, भाँति इसी नहीं, वह भी जला ॥६०॥

चार शार्ङ्गक खग रहे बच और बस, जल मरे आटविक असुर, पिशाच सब।
मय सुदर्शन चक्र से मरते बचा, गया अर्जुन की शरण में दौड़ जब ॥६१॥

इन्द्र देव गये मुदित वरदान दे, कृष्ण लौटे द्वारका ले स्नेह नव।
सभा-गृह-निर्माण तन्मय मय हुआ दिखा सब, ऋणशोधनार्थं कला-विभव ॥६२॥

सौध के वृष-पर्व नृप के उपकरण, स्वयं जा कर बिन्दुसर से ला अचिर।
कुशल दानव-विश्वकर्मा ने रचा, तुङ्ग, सचिवालय युधिष्ठिर का रुचिर।६३।

देवदत्त सुशख वारुण पार्थ को, भीम को भी दी गदा वृषपर्व धृत।
पाण्डवों को भाँति इस परितुष्ट कर, दे गया निज निलय विनिमय मय उचित।६४।

ज्यों युधिष्ठिर ने प्रवेश किया सविधि, भाइयों के संग उस नृप-भवन में।
नित लगे होने उपस्थित विबुध, मुनि, नृपति, भट प्रवचन, उपासन, नमन में।६५।

प्रश्न-विधि से धर्मसुत को सीख दी, एक दिन देवर्षि ने भी ज स्वयम्।
इन्द्र, वरुण कुबेर, यम, ब्रह्मा सभी, की सभाओं का बताया भी मरम ॥६६

इन्द्र-संसद में मिले नृप पाण्डु का दिया शुभ संदेश भारत देश-हित।
राजसूय करो, उठो भाई सभी, हरिश्चन्द्र समान तुम भी हो प्रथित ॥६७॥

देव ऋषि तात का उपदेश सुन, पाण्डवाग्रज राजसूयप्रवण-हुए।
जानने को कृष्ण की संमति उन्हें, बुला चर को भेज उत्सुक-मन हुए ॥६८॥

मानते थे वे कि "जीवन्मुक्त हरि,आप्त है सर्वज्ञ, विश्वसनीयतम।
लोकहित को देख देंगे नीति जो, वे वही होगा अयन मेरा परम" ॥६९॥

कहा केशव ने—"स्वयं हैं जानते महाराज ! समस्त जग का आप हित।
सब गुणों से राजसूयमखार्ह हैं आप, यह भी तथ्य है सब को विदित ॥९०॥

काम्य भुवन-कुटुम्ब में दृढ़ एक नृप, सर्वजन-प्रतिपाल-पोष समर्थ है।
तुल्य बहुनृपता, कुनृपता, अनृपता लोक-हित प्रत्येक विघ्न, अनर्थ है ।।७१॥

जरासन्ध बना चुका खलयोजना, मगध-नृप साम्राज्य का पर है प्रबल।
हो नहीं वध के बिना उसके अतः आपका संकल्प पाएगा सफल ॥७२॥

क्षात्र पुंगव वीर्यधनसब परशुधर से वैर ठाने हुए निहत।
तज प्रजाव्रत कलह-रति-रत आज के, ऐल, ऐक्ष्वाकन, ययातिज भूपशत ॥७३॥

शरण में जा मगध चेदिप हुए सैन्यनायक दृप्ततम शिशुपाल हैं।
हंस, डिम्भक, दन्तवक्र, करुष नृप, मेधवाहन करभ सब नतभाल हैं ॥७४॥

मुर, नरक, यवनाधिपति, भगदत्त भी उसी के प्रति, तन वचन मन से प्रणत।
भूप पौण्ड्रक अङ्ग बङ्ग किरातपति है अर्हदिव हेतु उसके ही प्रयत ॥७५॥

पाण्ड्म, क्रथकैशिकजयी, भीष्मक बली, स्वयं भोज महेन्द्रसख मेरे श्वशुर।
पक्षधर उसके हुए जित भीत हो, कीर्ति से उसकी प्रखर मुझसे बिछुड़ ॥७६॥

त्याग उत्तर हैं अठारह भोजकुल, गये पश्चिम में उसी से त्रस्त हो।
मत्स्य, कोशल. कुन्ति के कितने सुभट, छिपे दक्षिण में स्वदेश-निरस्त हो ॥७७॥

बहुत से पंचाल वीर जहाँ तहाँ, ले चुके हैं भाग भय से ही वरण।
यादवों को कर तिरस्कृत कंस ने, किया उसकी दो सुताओं का वरण ॥७८॥

बन गया बल से उसी के ज्ञाति का कर पराभव दुष्ट मथुराभूप वह।
भोजकुल के गुरुजनों की मन्त्रणा, नीति के न कभी चला अनुरूप वह ॥७९॥

मान उनकी प्रार्थना अक्रूर से, तब सुतनु आहुक-सुता ब्याही गयी।
मार भैया और मैंने कंस को, की पुनः स्थापित सरणि गौरवमयी ॥८०॥

कुपित हो जामातृ-वध से किन्तु वह लगा बारंबार करने आक्रमण।
शक्य वर्षों में किसी भी विधि न था वाहनी सुविशाल का उसकी मथन ॥८१॥

कपट वध कर हंस डिम्भक का अतः, त्याग मथुरा द्वारका को हम गए।
रैवतक पर एक दुर्ग कुशस्थली नगर का निर्माण सुदृढ़ किया नए ॥८२॥

वहाँ कृतवर्मादि सात महारथी, सात अतिरथ राम, सात्यकि मुझ सह।
नारियाँ भी युद्ध-शिक्षण ले रहीं दुर्ग में उस रह सुरक्षित हैं अनिश ॥८३॥

मथ दिया इस भाँति उसने राष्ट्र को, नृप छियासी वीर कारावद्ध हैं।
और चौदह यदि मिलें: उसके वधिक आज शत नरमेध हित संबद्ध हैं ॥८४॥

आततायी का मनाते इस सतत भूप-शत आत्माभिमानी नाश हैं।
कौन उनकी नेतृता खुल कर करे, सोच मन ही मन परन्तु निराश हैं ॥८५॥

प्रजापालन से भगीरथ, विजय से हो गए सम्राट् मान्धाता प्रवर।
भरत शुभ बल से, मरुत्त समृद्धि से, आप किस से बात में किस न्यूनतर ।।८६।।

आप यदि संकल्प खल के नाश का उस करें, तो साथ दें शत राजकुल।
औरा कारा-मुक्त हों यदि बद्ध नृप, प्राणभय तज वे करें संगर तुमुल ।।८७।।

भीम बोले—"तीन ही हम मगध में जा करें अभियान यह, होंगे सफल।
कृष्ण को नय-बल, मुझे भुजबल तथा शस्त्रबल है प्राप्त अर्जुन को विरल" ।।८८।।

धर्मसुत ने कहा—"मेरी दृष्टि में शम, अवैर, अकामना ही श्रेय है।
आप भागे भीत जिससे द्वारका, वह त्रिलोकी में अवश्य अजेय है" ।।८९।।

तब किरीटी ने कहा—"भैया सुनें, व्याज है यह राजसूय, न लक्ष्य है।
निरपराध, बँधा नृपति-मण्डल तथा प्रजा भारत की प्रथमतः रक्ष्य है ।।९०।।

स्पृहा-हिंसा-विरत मुनियों के लिए उचित है काषाय, सिंहासन नहीं।
नाश के न बिना कभी कुश काश के, शस्य-कृषि देखी सुनी जाती कहीं ।।९१।।

सज्जनों का, निर्बलों का त्राण ही आक्रमण से क्षत्त्र हेतु स्वधर्म है।
अनुत्थान, अवैर ब्राह्मण धर्म हैं, मनु-समाज-विधान का यह मर्म है ।।९२।।

और भी है बात एक, करें क्षमा, यह न मेरा दम्भ, दृढ़ विश्वास है।
एक मैं पर्याप्त जब तक दिव्य यह इषुधि-युत गाण्डीव मेरे पास है" ।।९३।।

"काल बार्हद्रथ मुझे लगता स्वयं यज्ञहित साहस करूँ तज प्राण-भय!
भेज संकट में तुम्हें किस भाति दूँ ?भीम तुम दो नेत्र, हरि साक्षात् हृदय" ।९४।

सुन युधिष्ठिर-वचन मोहाविष्ट यह, कृष्ण बोले-"स्वयं आप सुधीर हैं।
क्या अमर रहता न करता युद्ध जो, प्राण-संकट मोल लेते वीर हैं ।।९५

जरासंधवधार्थ आशिष आप दें, मगध जाएँ सज्ज केवल तीन हम।
बुद्धि से उसका करें वध, प्राण निज लोक-हित वा त्याग गति पावें परम ॥९६॥

नीति मुझमें, भीम में बल, साथ में चलें रक्षक बन हमारे और जय।
आप दोनों भाइयों को दें मुझे न्यासवत् विश्वास रख, तज मोह, भय ॥९७॥

भीम, अर्जुन को उसी विधि माँगता आप से मैं लोक-हित का ध्येय ले।
माँग लक्ष्मण, राम को जिस भाँति थे अवध-भूपति से गए गाधेय ले" ॥९८॥

'एवमस्तु' कहा युधिष्ठिर ने मुदित, और पहुँचे मगध तीनों चल तुरत।
फोड़ भेरी, तोड़ चैत्यक गिरि-शिखर दुर्ग में अद्वार से पहुँचे प्रयत ॥९९॥

निरख इन का विप्रवेष किया नहीं, मार्ग में प्रतिरोध भट ने भी किसी।
जरासन्ध-समीप पहुँचे लाँध ये तीन कक्षाएँ जनाकुल विधि इसी ॥१००॥

कृष्ण बोले—"आज इनने है रखा मौन कारण-वश महीश ! निशीथ तक।
यदि अनन्तर आप कष्ट करें तभी, हम करेंगे बात निर्जन में पृथक् ।१०१।

यज्ञशाला में उन्हें ठहरा सविधि, मान यह पण गया बार्हद्रथ भवन।
और एकाकी पुनः लौटा वहाँ, कर चुका गिरिव्रज नगर जब सुख शयन ।१०२।

कहा हरि ने—"तथ्य यह, ब्राह्मण न हम, आप से द्वन्द्वेप्सु क्षत्रिय वीर हैं।
कृष्ण मैं, ये भीम, ये अर्जुन खड़े, तोड़ आए आप के प्राचीर हैं ॥१०३॥

नृप छियासी रुद्ध कारा में यहाँ, दें उन्हें निज राज्य बन्धन-मुक्त कर।
यदि हमारी माँग अस्वीकार्य तो, करें हम में से किसी से भी समर ।१०४।

राजसूय-यजन युधिष्ठिर चाहते, आप का भी यह प्रकट अभिलाष है।
इन्द्रप्रथ, मगध परस्पर यदि लड़ें, कोटि वीरों का अवार्य विनाश है ॥१०५॥

ज्येष्ठ पाण्डव-प्रहित प्रतिनिधि तीन हम; करें हममें से किसी से द्वन्द्वरण।
जो विजेता हो बने अधिराज वह, अन्य कर ले अनुगमन का स्वीकरण" ॥१०६॥

गिरिव्रजेश विचार बोला निमिष भर,—"धर्म-सुत का पण मुझे स्वीकार है।
मैं लड़ूँगा भीम से, उसकी विजय मान लूँगा मैं मगध को हार है" ॥१०७॥

जरासन्ध बुला तनय सहदेव को, कर उसे अभिषिक्त रण में भिड़ गया।
बक-हिडिम्बासुर-निहन्ता भीम से मल्लयुद्ध तुरन्त उस का छिड़ गया।१०८।

नवयुवक से लड़ थका जब वृद्ध नृप, कृष्ण ने संकेत धीरे से किया।
चीर शत्रु-शरीर को झट भीम ने वेणु-सम ही सम-द्विभाजित कर दिया।१०९।

अन्त उस मगधेश का इस विधि हुआ, त्रस्त जिस से अखिल भारत देश था।
आततायी लुठित हो क्षिति पर वही नीति से हरि के पड़ा स्मृति-शेष था! ११०।

रथ द्वियोधी अजय मगध-महीश का हाँक द्रुत हरिने दिया कर हस्तगत।
भीम, अर्जुन जा चढ़े उस पर तुरत, इन्द्र विष्णु समान तारक वध-निरत १११

कर नृपों को तुरत कारामुक्त ये, नगर से बाहर गये तीनों निकल।
रौद्र रूप निहार इनका पौर भट, भीत, विस्मित हो गए हत-मति सकल।११२

लौट आए इन्द्रप्रस्थ मगध-जयी, मुक्त नृप-गण धर्मसुत-संहित हुए।
पा बृहद्रथ-रथ युधिष्ठिर से मुदित, भेंट माधव द्वारका प्रस्थित हुए।॥११३॥

तब किरीटी ने युधिष्ठिर से कहा—"चाहता दिग्विजय-हित अभियान मैं।
आपके एकातपत्र प्रभुत्व में, देखता हूँ विश्व का कल्याण मैं।॥११४॥

तभी आये व्यास और कहा—"विजय! वीरता का विश्वहित विनियोग है।
सार्वभौम अजातशत्रु बनें, बहुल-भूपता इस भूमि का चिर रोग है।११५॥

जा उदीची देवजय अर्जुन करें, भीम प्राची का करें दुर्हृद्-शमन।
नकुल पश्चिम से तथा दक्षिण दिशा से करें, सहदेव जा कर कर-ग्रहण" ११६

व्यास की संमति बनी सब के लिए देशहित आदेश, आशीर्वाद, वर।
ले सभी शस्त्रास्त्र, रथ, सेना निकल पड़े मन में दिग्विजय-उत्साह भर।११७।

जीत जगती शीघ्र लौटे वे लिए, भेंट, कर, आभरण, मणि, वाहन, वसन।
भाइयों को देख चारों दिग्जयी, धर्मराज हुए मुदित पा कीर्ति, धन ।।११८।।

प्रजारञ्जन, कुजन-दमन, सुजन-नमन, न्याय-विधि, आक्रमण-वारण, सत्यव्रत।
धर्मसुत का देख संशय, भीति तज लगे रहने लोग निज निज-कार्यरत ।।११९।।

धर्मतः शासन, करार्जन न्यायतः निरख पशु, वाणिज्य, कृषि की प्रगति नित।
हुए अद्वेष्टा सभी उन के अतः, नामधेय अजातशत्रु हुआ प्रथित ।।१२०।।

स्तेन, लुण्टक, ठग रहा कोई नहीं राजपुरुषों ने तजा अन्याय, छल।
रोग, आग, अवृष्टि वा अतिवृष्टि का भय मिटा, विश्वास प्रकट हुआ अटल १२१

धर्म पूर्वक ही सभी अर्जन हुए, अन्न, धन का पर महान् हुआ निचय।
राजसूय-निमित्त आमन्त्रित किए नृप गए, तब कृष्ण-संमति ले अभय।१२२।

सब दिशाओं से जुटे सब भूमि-पति, ले विविध उपहार, कर, मणि, अन्न, धन।
विप्र, मुनि, नट, योध, भूप-प्रवाह से इन्द्रप्रस्थ नगर गया जन-सिन्धु बन।१२३।

भार संजय ने नृपो के, द्रौणि ने ब्राह्मणों के मान स्वागत का लिया।
द्रोण, भीष्म लगे कृताकृत देखने, विदुर को व्यय का प्रभार गया दिया।१२४।

ह्मणों का चरण-प्रक्षालन विनत कर रहे थे कृष्ण बन सेवक स्वयम्।
और थे धृतराष्ट्र, वाह्लिक, सिन्धुपति, सोमदत्त वहाँ उपासित स्वामिसम।१२५।

दक्षिणा के दान में, उपहृत कनक-मणि-परीक्षण में निरत थे कृप सतत।
भोज्य-भवन नियुक्त दुःशासन हुए, रत्न-संग्रह-हेतु दुर्योधन प्रयत ॥१२६॥

यज्ञ में उस भेंट, राजा की किसी श त सहस्र कनक पणों से थी न कम।
अहमहमिका से सभी बरसा रहे, अन्न, काञ्चन, रत्न थे नन्दित परम।१२७।

ऋद्धि कौरववर युधिष्ठिर की बढ़ी, वे वरुण से हुए त्रिभुवन में प्रथित।
देव, नारद आदि ऋषि वन्दित सभी, विप्र, राजा, वैश्य शूद्र हुए मुदित।१२८।

भीष्म बोले—"अर्घ्य ला पूजा करो वृष्णि-नायक कृष्ण की सब से प्रथम।
इस सभा में दिख रहे ये हैं ज्वलित तेज, बल, विक्रम सबों में सूर्य-सम"।१२९।

अर्घ्य का उपहृत प्रथम सहदेव से कृष्ण ने सादर प्रतिग्रह जब किया।
सभा में शिशुपाल गर्जा हो खड़ा—"प्रथम अर्घ्य अपात्र को तुमने दिया १३०।

पितामह, वाह्लीक, भीष्म, श्वशुर द्रुपद हैं, पिता वसुदेव, ऋत्विज व्यास हैं।
द्रोण, कृप आचार्य, द्विज हैं, द्रोण सुत, शल्य, दुर्योधन प्रभृति नृप पास हैं ॥१३१॥

कर्ण, भीष्मक शंख रूक्मी को बुला समिति-मध्य किया गया अपमान है।
भीष्म, कृष्ण, अजातरिपु धर्मध्वजी सब दिखे, सब की हुई पहचान है"।१३२

क्रुद्ध चेदिप को मनाया भीष्म ने, तब युधिष्ठिर ने सुना बहुविधि वचन।
किन्तु वह बकता रहा अश्लील, तब चक्र से हरि ने किया उस का हनन।१३३।

यज्ञ पूर्ण हुआ, युधिष्ठिर ने किया सविधि अवभृथ-स्नान, सब लौटे नृपति।
हुए आगत देव, ऋषि, द्विज, भूप, भट, अतिथि, याचक पा समादर प्रीत अति १३४

द्वारकेश गए सबों के बाद तब, शकुनि दुर्योधन वहाँ दो ही रहे।
राजसूयोत्सब, सभागृह मय-रचित, राजवैभव देख मत्सर-शर सहे ॥१३५॥

स्फटिक-तल को समझ जल ऊपर उठा, वसन दुर्योधन हुआ लज्जित विमन।
समझ जल को स्थल अनवहित चल गिरा, हो गए गीले सभी उस के वसन।१३६।

विवृत को संवृत कपाट समझ लगा द्वार वह दोनों करों से खोलने।
वितथ-यत्न असंतुलित हो शून्य में, लगा गिरने, डगमगाने, डोलने ॥१३७॥

शकुनि चलता था तटस्थ सम्हल सम्हल, इस लिए न गिरा, न टकराया कहीं।
पाण्डव-श्री देख आँखें अन्ध थी, काम करती ज्येष्ठ कौरव की नहीं ॥१३८॥

देख परधन अन्ध-नृप-सुत-नयन पर भाँति किस ईर्ष्यान्धता थी छा गई।
भीम, अर्जुन, कृष्ण,कृष्णा, यमज-युग को हँसी यह निरख बरबस आ गई १३९

हाय ! झगड़े की बनी जड़ यह हँसी, क्रूर विधि भी छिप कहीं हँस था रहा।
रो रहा था रोम-रोम अमर्ष वश, कौरवाग्रज से न जाता था सहा ॥१४०॥

लौट दुर्योधन भवन बोला—पितः हुए पाण्डव इन्द्र-वरुण-कुबेर-सम।
देख शत्रु-विभूति हूँ नित जल रहा, प्राण आकुल हैं निकलने को स्वयम्।१४१।

जो कभी देखे सुने न, बरस रहे थे वहाँ वे अन्न, मणि, वाहन, वसन।
गा रहे गन्धर्व यश, हो आ जुड़ा ज्यों वहाँ आकृष्ट हो सारा भुवन ॥१४२॥

इलावृत, कश्मीर, कम्बुज, सिंहपुर, केतुमाल, दशार्ण, कुन्तल, तालवन।
शूरसेन, सुराष्ट्र, शूर्पारक, त्रिपुर, हिरण्यक, आनर्त, पुण्ड्र, अधोभुवन।१४३।

अंग, बंग, कलिंग, प्राग्ज्योतिष, ऋषिक, चीन, सुह्म, किरात, केकय, शक मलद
पंचनद, गंधार, बाह्लिक, शिव, यवन, सिन्धु, शाकल औड्र, बर्बर, खस,दरद।१४४

ताम्रलिप्रि, कुविन्द,मालव, नीलगिरि,चोल, केरल,पाण्ड्य, आन्ध्र, द्रविड, निषध।
चेदि, सिंहल,भोजकट, अश्मक, कुकुर, वत्स, काशी, कुन्ति,मालव, झष, मगध १४५

कालकूट, कुलिन्द, लोहित, बर्हिगिरि, मत्स्य, क्षुद्रक, नृप अवन्ति प्रदेश के।
थे उपस्थित भूप देश विदेश के द्वार पर आयात नाना वेश के ॥१४६॥

देवप्रस्थ, उलूक, हाटक, श्वेतगिरि, हेमकूट, निषाद, लंका, नागपुर।
मद्र, पह्लव, किंपुरुष, कोसल, महामेरु मानस, ताम्रद्वीप विराटपुर ॥१४७॥

शाल्व, अन्तर्गिरि, बर्हिगिरि उपगिरिक, माल्यवत् भद्राश्व, किष्किन्धानगर।
शृङ्गवत्, माहिष्मती, अम्बष्ठ, पुर, गन्धमादन, बर्बरक, सौवीर वर ॥१४८॥

थे खड़े मूर्धाभिषिक्त सहस्रनृप तीर्थजल-घट, धेनु, हाटक ले निकट।
धर्मराज ययाति, मान्धाता, नहुष, पृथु, भगीरथ, रन्तिदेव बने प्रकट ॥१४९॥

रिपु-विभव जब तक न मैं लूँ छीन यह, जी न सकता हूँ कभी आराम से।
युद्धहित आह्वान भेजूँगा उन्हें, मैं न डरता आप सा परिणाम से" ॥१५०॥

शकुनि बोला—"हाँ करो आह्वान पर द्यूत-रण-हित सर्वथा तज शस्त्र-रण।
मैं हरूँगा लड़ तुम्हारी ओर से धर्मराज-समृद्धि का प्रत्येक कण ॥१५१॥

शिञ्जिनी है अक्ष-हृदय, धनुष बने ग्लह, तथा हैं अक्ष शर, आस्तार रथ।
अक्ष-कौशल से किसी भी योध को निपुण दूँगा मैं सहज ही तुरत मथ" ।१५२।

शकुनि के दुर्मन्त्र से धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को विदुर से बुलवा लिया।
अक्ष-क्रीडा-समर-हित प्रस्ताव फिर, कौरवाग्रज ने युधिष्ठिर से किया ।१५३।

शस्त्र अथवा पाश की ही क्यों न हो, मुहँ न थे प्रतियोगिता से मोड़ते।
सुन उभय आह्वान रहते युद्ध में स्थिर युधिष्ठिर, प्रण न यह थे तोड़ते ॥१५४॥

उस समय थी यही वीर-परम्परा भोगना जिसका पड़ा नल को कुफल।
क्षत्रियोचित-काल-मर्यादा विवश 'ना' नहीं कह धर्मराज सके सरल ॥१५५॥

शकुनि बन स्वस्रीय का प्रतिनिधि कितव, खेलने छल-द्यूत शठ पापी लगा।
जीतता अविरत गया प्रत्येक ग्लह, जाल्म ने उस राज-विभव सकल ठगा।१५६

नकुल को सहदेव, अर्जुन, भीम को हार विजित हुए स्वयं भी धर्मसुत।
शकुनि का पण मान हारे अन्त में, द्रौपदी को भी युधिष्ठिर सर्वहुत॥१५७॥

"धिक् स्वयं निर्जित युधिष्ठिर का पणन-हेतु-बाधन", वृद्ध बोल उठे सकल।
भीष्म, द्रोण, कृपादि खिन्न हुए, विदुर सिर पकड़ बैठे अतीव हुए विकल।१५८।

बार-बार गँवा कपट-गंभीरता पूछने धृतराष्ट्र नृपति लगे मुदित।
क्या विजेता पुनः कौरव ही हुए, शेष सभ्य सभी हुए पीड़ित, रुदित।१५९।

कर्ण प्रमुदित हो गया इतना अधिक, शकुनि, दुःशासन हुए जितना नहीं।
खल सुखी होते विपद् से बन्धु के, स्वयं पाने से समृद्धि अधिक कहीं।१६०।

दुष्ट दुर्योधन मुदित बोला—"विदुर ! याज्ञसेनी को बुला लाएँ यहाँ।
वह बनी दासी, करेगी आज से काम मैं जो भी बताऊँ जब जहाँ"॥१६१॥

कहा क्षत्ता ने—"न दुर्योधन ! तनिक निहत-बुद्धि अनीति से तुम डर रहे।
हरिन सम तुम हरि सभों को क्या त्याग भय आह्वान इस विधि कर रहे १६२

बन न सकती द्रौपदी दासी कभी, द्यूत-मर्यादा न तुम को ज्ञात है।
स्वयं दास बने युधिष्ठिर का इसे दाँव पर रखना विधान-विघात है"।१६३।

"जा बुला लाओ तुम्हीं तब शीघ्र" यह प्रातिकामी मान दुर्योधन वचन।
द्रौपदी के पास जा लौटा तुरत, समिति में दुहरा दिया कृष्णा-कथन॥१६४॥

"द्यूत में हारा स्वयं को या मुझे धर्मसुत ने पूर्वतर है प्रश्न यह।
दें सभासद् विज्ञ जो उत्तर उसे आ अभी जाओ मुझे तुम शीघ्र कह"।१६५।

वृद्ध दुर्योधन गरज बोला—"उसे स्वयं दुःशासन ! तुम्हीं लाओ पकड़।
दास ये पाण्डव बने हैं विवश जड़, क्या करेंगे अब झगड़ ये या बिगड़" ।१६६।

क्रूर दुःशासन गया लोहित-नयन द्रौपदी से जा कहा यह कटुवचन—
कौरवाग्रज को भजो तज लाज, भय पार्षती ! तुम हो विजित बन अक्ष-पण" १६७

पोंछ आँसू द्रुपदजा भागी वहाँ, स्थित जहाँ धृतराष्ट्र का परिवार था।
आततायी किन्तु दुःशासन अदय से न उस का छिप कहीं उद्धार था ॥१६८॥

दौड़, लपक, खदेड़ बालों को पकड़ उस नराधम ने घसीट उसे लिया।
हाय ! कदली-दल-सदृश भय, लाज से काँपती को सभा-मध्य खड़ा किया ! १६९

अधोनीवी, एक वसन रजस्वला तन छिपाती सी विकीर्ण-कचा सिकुड़।
वह खड़ी थी, और कौरव थे निठुर ताकते तज लाज, धर्म टुकुर-टुकुर !।१७०।

बिलखती झुक वह खड़ी बोली— सुनें, एक भी क्या समिति में ऐसा न जन।
घोर अत्याचार नारी जाति पर हो रहा, है मानता जो क्षुब्ध-मन ? ।१७१।

दुर्नियति से कौरवों की क्या सभी, एक ही है साथ मति मारी गई ?
द्रोण, कृप, गाङ्गेय, द्रौणि, विदुर, श्वशुर, कहें, क्या मैं नियमतः हारी गई?" १७२

देख करते यों विलाप उसे करुण, कहे दुःशासन अधम ने दुर्वचन।
अट्टहास किया समर्थन में शकुनि, कर्ण, दुर्योधन त्रिखल ने मुदित मन ।१७३।

प्रियतमा का घोरतम अपमान यह, भीम से देखा न मौन सहा गया।
धैर्य खो, हो अतिकुपित कटुतम वचन धर्मराज-निमित्त अवश कहा गया ।१७४।

तुरत अर्जुन ने कहा—"भैया ! उचित तात-मर्यादा न इस विधि तोड़ना।
कूट-नीति-प्रवीण रिपु हैं चाहते, भेद डाल हमें किसी विधि फोड़ना ॥१७५॥

द्यूत-हित भैया स्वयं आए नहीं, यहाँ बुलवाए गए आह्वान कर।
द्यूत खेला शत्रु से आहूत हो, क्षात्र नियम-परंपरा का ध्यान कर" ।।१७६।।

सह न पा बोला विकर्ण अनीति यह—"पार्षती का प्रश्न सीधा स्पष्ट है।
क्यों न कोई सभ्य उत्तर दे रहा ? मौन क्यों यह ? मति सबों की नष्ट है? १७७

अस्तु, मैं कहता, सुनें सब ध्यान दे द्यूत, मृगया, पान हैं भीषण व्यसन।
विहित आपद्धर्म है इनमें दिए वचन का पालन न करना स्वस्थ बन।१७८।

कितव से आहूत हो पण में रखा, द्रौपदो को स्वयं पहले हो विजित।
शकुनि से ले नाम प्रस्तावित, अपर चार अनुजों की वधू संयुत दयित ।।१७९।।

अतः पाञ्चाली-विजय को मानता मैं अमान्य, अनीति, पातक घोर छल"।
"शकुनि धिक् धिक्, साधु साधु विकर्ण" यह कह सभासद् एक साथ पड़े उछल।१८०

दानदम्भी मत्सरी बोला कुपित कर्ण—"होते तज्ज भी है तद्वधक।
अरणि ही अरणिज अनल से, देह ही रोग देहज से प्रथम उठती लहक" ।१८१।

[कोपवश मुँह से कढ़ा यह कर्ण का वाक्य उस में ही अधिक चरितार्थ था।
स्वयं हो वह पार्थ स्तत अपार्थ बन घुल रहा दिन रात पार्थ-वधार्थ था]।१८२।

द्रोण, कृप, धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा भीष्म द्रौणि सभी निहारो मूक हैं।
एक तेरे ही कृतघ्न, कुबुद्धि ! बस चुभ रहे उर में दया के शूक हैं ! ।।१८३।।

मुँह रहे हो फाड़, छाती फट रही है, तुम्हारी द्रौपदी के मोह से।
मन्दमति बालक निरे तुम स्थविरवत् पंच बनते भाइयों के द्रोह से ।।१८४।।

धार्तराष्ट्र ! अभी समझते कुछ न तुम, धर्म की न तुम्हें तनिक भी गति विदित।
विजित कृष्णा को अजित तुम कह रहे, तुम्हें परहित में न दिखता निज अहित ।१८५

हार बैठे धर्मसुत सर्वस्व निज द्यूत-रण में सुबल–सुत से क्या नहीं !
क्या न आती द्रौपदी सर्वस्व में ? सब हुआ जित, वह अजित कैसे रही ! १८६।

धर्म से कैसे न कृष्णा जित हुई ? क्या युधिष्ठिर ने इसे माना न पण ?
भाइयों ने शेष क्या आपत्ति की ? कर उसे घोषित स्वधन, संयुक्त धन ! १८७।

आनयन इस का सभा में इस भरी, है न कोई अध, बने शतभोग्य यह।
बन्धकीसम स्पष्ट यह बहुभर्तृका, मान के न कुलांगना के योग्य वह। १८८।

एकवसन, विवसन, रुग्ण, रजस्वला किसी स्थिति में पाण्डवों की है द्रविण।
धर्मसुत के अचल, चल धन की विजय सुबल-सुत द्वारा कहाएगा वृजिन ? १८९।

यह विकर्ण अबोध, प्राज्ञंमन्य है, छीन दुःशासन, सबों के लो वसन।
पाण्डवों की, द्रौपदी की देह पर दिख रहा जो, विजित वह प्रत्येक धन"। १९०।

न्यून दुर्योधन, अधिक खल कर्ण था, मुद्दई ही सुस्त चुस्त गवाह था।
कमल था केवल खिला तल पर, भुजग-ग्राह-गेह, तडाग कर्ण अथाह था। १९१।

पाण्डवों ने कर्ण का दुर्मन्त्र सुन स्वयं ही सारे उतारे निज वसन।
द्रौपदी थी काष्ठ-प्रतिमा सी खड़ी, अश्रुपूरित, भीत, लज्जित, नतवदन। १९२।

स्वयं दुःशासन अधम, उस पर मिली प्रेरणा राधेय खल से भी प्रबल।
द्रौपदी के खींचने बरबस लगा वस्त्र वह ? झुक, मुड़ बचाने यह विकल। १९३।

सर्वथा असहाय कृष्णा ने किया बिसर बल सब कृष्ण का रो रो स्मरण।
"मातुलेय, व्रजेश, गोपीधन, सखे ! पाहि माम् भक्तार्त्तिहर अशरण-शरण" १९४

बन गया परिधान तुरत अनन्त वह, द्रौपदी का तन निमिष में ढक गया।
अयुत-गज-बल विरल खल का भुजयुगल खींच-खींच जिसे स्वयं ही थक गया १९५

देख दृश्य समक्ष यह अदभुत स्वय सभ्य सारे त्रस्त, विस्मित हो गए।
कुरुज-निन्दा, द्रुपदजा-स्तुति-में सभी स्तिमित, नन्दित आँख फाड़े खो गए! १९६

हाथ मलते भीम स्फुरिताधर उठे, ले सभा में शपथ— "सभ्य सुनें सभी।
यदि करूँ मैं यह न कुरुज पितामहों, पूवपुरुषों की न गति पाऊँ कभी।१९७।

अदय दुःशासन अधम की युद्ध में फाड़ छाती गर्म पीऊँगा रुधिर।
जिसे देख भविष्य में कोई करे दृप्त ऐसा घृणित दुःसाहस न फिर" ॥१९८॥

बैठ दुःशासन गया थक, डर, लजा; भीति-कम्पित हो सदस्य-निवह गया।
किन्तु कृष्णा विजित है अथवा न यह, मूल प्रश्न अनुत्तरित ही रह गया।१९९।

द्रौपदी रोरुद्यमान, अवाग्वदन सभ्य हैं यह लख विदुर बोले व्यथित—
"अनृत भाषण या अभाषण समिति में बैठ कर है मोहवश सम अघ कथित २००।

दें सभासद् मान्य निज मन्तव्य सब, पार्षती का प्रश्न है न विलम्ब-सह।
मुँह न मोड़ें धर्म से, है पूछती आप से क्या धर्म्य, अबला आर्त्त यह" ॥२०१।

कह सका कोई न कुछ हतबुद्धि हो चुप रहे सब विदुर के भी सुन वचन।
कर्ण बोला—"सुनो दुःशासन, विजित सेविका यह जाय दुर्योधन-भवन" २०२

लाज से गड़ती, बिलखती, काँपती को पुनः पकड़ा लपक कर नीच ने।
भागती हतभाग्य कृष्णा को सभा-मध्य दुःशासन लगा फिर खींचने ॥२०३॥

वह पुनः बोली—"सुनें कुरुवृद्ध सब, कर रही कर जोड़ अभिवादन, नमन।
क्षान्त हो अपराध, है करणीय का हो गया मुझ से विपद् वश विस्मरण।२०४

सकृत् हो मैं हुई जनता-दृष्ट हूँ, अजिर से बाहर स्वयंवर हेतु आ।
अन्यथा मेरा न रवि या अनिल भी थे सके दर्शन कभी या स्पर्श पा ॥२०५॥

आज धर्षण भी रहे सह पाण्डुसुत, देखते सांसद मुझे सब नग्न हैं।
लुट रही लज्जा सबों के सामने, धर्म-निर्णय में जरठ-जन मग्न हैं ।।२०६।।

द्रुपद-तनया, स्वसा धृष्टद्युम्न की, वेदिजा कुरुकुलवधू मैं ज्येष्ठतम।
सती प नी पाण्डवों की, कृष्ण को प्रिय सखी हूँ सह रही परिभव विषम।२०७।

काल सर्व-समर्थ दारुण निकृति अब अधिक दिवस न यह सकेगा किन्तु सह।
आप जो चाहें, विजित वा अजित इस दीन अबला को सुनाएँ आज कह"।२०८।

भीष्म बोले—"धर्म-गति हो दुरधिगम, स्पष्ट दिखती बात फिर भी एक है।
अन्त होगा शीघ्र ही कुरुवंश का, हो चुका इस का विलुप्त विवेक है।२०९।

द्रोण आदि गतासु-तनु से दिख रहे, अधोमुख, कोई न कुछ भी बोलता।
पाण्डु वधु ! है धन्य तू ही, धर्म से आज भी तेरा न मन है डोलता" ।।२१०।।

भीम बोले—"धर्मराज स्वयं यहाँ गुरु हमारे पाण्डु कुल के प्रभु परम।
यदि न होते, सह न सकते थे कभी वल्लभा-धर्षण-कदर्थन-कोप हम ।।२११।।

ईश ये पुण्यों, तपों के और इन प्रेष्ठ प्राणों के हमारे मौन हैं।
मानते यदि ये सबों को हैं विजित, अनुज हम होते विरोधक कौन हैं ! ।२१२।

पाण्डवी का केश-धर्षक अन्यथा आततायी मृत यहाँ होता पड़ा।
भूमि पर रह कौन सा दुःसाहसी मर्त्य मेरे सामने रहता खड़ा ! ।।२१३।।

खोल आँखें बाहुओं को ठीक से देख लो, इन वृत्त, आयत परिघ-सम।
बच न सकते बीच में इन के पड़े, क्यों न वे होंवे दिवस्पति ही स्वयम् ।।२१४।।

धार्त्तराष्ट्रों को मृगों से क्षुद्र इन, सिंह-सम मेरा गिरा दे पाणि-तल।
किन्तु अर्जुन और भैया से बँधा, धर्म संकट से न इस पाता निकल ।।२१५।।

द्रोण, भीष्म, विदुर त्वरित बोले उन्हें-"भीम ! तुम से सहज सब संभाव्य है।
पर क्षमा से ही अभी तुम काम लो, धर्म से विपदब्धि भी यह नाव्य है" ।२१६

कर्ण बोला धृष्ट किन्तु तभी—"सुनो, द्रुपदजे ! धृतराष्ट्र के घर जा रहो।
जो कहें धृतराष्ट्र-सुत-शत वह करो, बन्द कर मुँह दुःख दासीवत् सहो ।२१७

पाण्डुसुत जब तक रहेंगे दास बन, तू बनी दासी रहेगी, रख स्मरण।
कौरवों में से किसी का तज इन्हें, कर नहीं लेती स्वयं यदि तुम वरण" २१८।

घृणित यह संकेत पा, स्मितमुख निरख कर्ण को मुँह भीम को बिचका; विहँस।
कौरवाग्रज ने दिखाई वाम निज, जाँघ खोल, द्रुपद-सुता को देख, डँस ।२१९।

फिर खड़े हो भीम बोले-"युद्ध में यदि गदा से जाँघ मैं तोड़ूँ न यह।
भरतवंशज पितर हों मेरे जहाँ, शपथ खा कहता, न पाऊँ लोक वह" ॥२२०॥

अग्नि-कण मानों बरसने लग गये भीम के अतिकुपित नेत्रों से निकल।
विदुर ने चेतावनी दी-"कौरवो ! सोच भावी आज भी जाओ सम्हल" ।२२१।

"ज्येष्ठ थे जब तक स्वतन्त्र, समर्थ हों, भले ग्लह में परिजनों के रह अदय।
पञ्चपतिकापणन-प्रभु कैसे रहे, दास भी बन, कहें गान्धारी-तनय" ॥२२२॥

हो खड़ा बस कह यही बैठे पुनः, शान्त अर्जुन धैर्य धर ज्यों ही इधर।
उधर कौरव अग्निहोत्र समीप आ रो उठे शत गृध्र, काक, शृगाल, खर ।२२३।

द्रोण, गौतम, भीष्म वाशित सुन अशुभ, "स्वस्त, स्वस्ति" लगे सभय उच्चारने।
विदुर, गान्धारी नृपति धृतराष्ट्र को समझ यह उत्पात आर्त्त पुकारने ।२२४।

नींद तब टूटी कुटिल धृतराष्ट्र की, कहा-"लो पाञ्चालि ! मुझसे वर लषित।
हो हमारी सभी वधुओं में तुम्हीं, सर्व-गुण-संपन्न, श्रेष्ठ, विपत्-कषित" ।२२५।

द्रौपदी बोली—"भरत-कुञ्जर ! मुझे यदि कृपा कर दे रहे स्वयमेव वर।
माँगती हूँ—धर्मराज पुनः बनें यथापूर्व अदास पाण्डु-तनय-प्रवर ।।२२६।।

ज्येष्ठ मेरा ही तनय प्रतिविन्ध्य भी दास-सुत जिस से न कहलाए कभी"।
आम्बिकेय 'तथास्तु' कह बोले पुनः-' एक माँगों और वर मुझ से अभी" २२७

"भीम, अर्जुन यमज युगल अदास हों सास्त्र, सरथ" द्रुपद-सुता के सुन वचन।
'एवमस्तु' कहा तुरत धृतराष्ट्र ने-"अभी सुभगे एक और करो वरण" ।२२८।

पार्षती बोली—'मुझे कोई स्पृहा अब नहीं वह लोभ जाएगी कही।
पाँच पात मेरे स्ववश निज शौर्य से जीत सकते हैं स्वयं सारी मही" ।।२२९।।

कर्ण बोला कुटिल—"रूपवती स्त्रियों में हुई पंचाल-दुहिता यह विरल।
सलिल से अपुलिन निकाल निमग्न भी अतरि पतियों को सलील लिया सकल'२३०

भीम ने देखा—"हमें धृतराष्ट्र से लाभ वर का कर्ण को न सुहा रहा।
व्याज है स्तुति द्रौपदी की व्रण-लवण, कह हमें 'स्त्री-त्रात' दुष्ट चिढ़ा रहा" ।२३१

क्रुद्ध वे बोले—गदा से मैं करूँ क्यों न यह स्मृति-शेष शत्रु-समाज ही।
हो समाप्त विवाद, शासन धरणि पर करें भैया हो अकण्टक आज ही ।२३२।

थे स्फुरित नासोष्ठ, कुटिल भृकुटि बने, रोष-लोहित, विवृत-नयन प्रचण्डतर।
भीत थे सब, ज्यों उपस्थित हो गये हों वहाँ सहसा कृतान्त युगान्तकर ।।२३३।।

भीम को रोका, युधिष्ठिर ने, कहा प्रणत हो धृतराष्ट्र से—"अब क्या करें।
आप ईश्वर हैं, हमें आदेश दें जो, उसे हम सीस पर सादर धरें" ।।२३४।।

तब कहा धृतराष्ट्र ने—सब ले स्वधन, राज्य खाण्डवप्रस्थ जाओ मुदितमन।
अन्ध, वृद्ध मुझे सुबलजा को तथा, देख कर लो इस पराभव का सहन" ।२३५।

मान ज्यों धृतराष्ट्र-वचन चले सभी पाण्डुसुत, चारो हुए अति व्यथित खल।
कर्ण, दुर्योधन, सहानुज, सुबलसुत पास आ धृतराष्ट्र के रोए विकल ॥२३६॥

कहा दुर्योधन, कुटिल ने रो-"पितः, क्या अहित था आप का मैंने किया।
आप ने मेरा बिगाड़ा खेल सब, धूल में अर्जन समस्त मिला दिया !।२३७॥

हो तिरस्कृत एक बार मुझे क्षमा, क्रुद्ध पाण्डव वीर पाएँगे न कर।
अर्धहृत विषधर सदा होता, सभी जानते, प्राप्तावसर हो प्राणहर ।।२३८॥

द्यूत से ही वश्य ये, संभव नहीं और कुछ इनके विरुद्ध उपाय है।
अन्यथा इन के करों से दिख रहा कौरवों का ही अशेष अपाय है ।।२३९॥

द्यूत खेलें एक बार पुनः, नहीं तो रहेंगे हम सदा संत्रास में।
जो पराजित हो, बिताए पक्ष वह वर्ष बारह अजिनधर वनवास में ॥२४०॥

लौट वह अज्ञातवास करे कहीं एक वर्ष पुनः सतत प्रच्छन्न बन।
आ स्वगृह पाए, करे निज राज्य तब, ठीक से पूरा हुआ यदि द्यूत-पण ।२४१।

यदि लिया पहचान जाए बीच में, वर्ष तेरहवाँ अभी न समाप्त हो।
यथापूर्व उसे स्वयं वनवास फिर अन्त में अज्ञात वास अवाप्त हो" ॥२४२॥

सुबलजा बोली विजन में "प्राणप्रिय ज्येष्ठसुत का त्याग आप करें अचिर।
मोहवश न तजा जनमते ही इसे, अजिर में आए अतः घन आज घिर"।२४३।

मन्त्र यह धृतराष्ट्र ने माना नहीं, द्यूत फिर उनके हुआ आदेश पर।
और पाण्डव विजित वनवासी हुए, सपरिवार, पहन अजिन, मुनिवेश धर २४४

गए द्रौपदी सहित पहन मुनिवसन पाण्डुसुत वन में।
कुन्ती रही विदुर के घर, वृद्धा असमर्थ गमन में ॥२४५॥

देख पाण्डव-विपद दुर्योधन उठा नाच, हर्षोन्मत्त दुःशासन सहित।
किया दोनों ने उन्हें हँस हँस चिढ़ा, वाणवाणी व्यथित, कोपानल-ज्वलित ।२४६

की प्रतिज्ञा भीमने—"हँस लो अभी मूढ़! जी भर किन्तु यह रखना स्मरण
गति न पाऊँ, तुम न दोनों का अधम! यदि करूँ सम्मुख समर में मैं हनन।२४७।

शकुनि का सहदेव, अर्जुन कर्ण का वध करेंगे, कह रहा, सुन लें सभी।
यदि ठनेगा युद्ध चारो दुष्ट ये निहत होंगे, पण न टल सकता कभी" ॥२४८॥

कहा अर्जुन ने—"प्रतिज्ञा कर रहा, मान भैया भीम! शासन आप का।
कौरवों को मैं कराऊँगा कठिन लौट प्रायश्चित्त इस कटु पाप का ॥२४९॥

कर्ण का, कर्णानुगों के संग ही, वध करेंगे दिव्य मेरे प्रखर शर।
और उनका बुद्धिमोहाक्रान्त जो आ करेंगे सामने मुझ से समर ॥२५०॥

हिल हिमालय भी उठे, निष्प्रभ वनें सूर्य, शीतलता तजें निज शीतकर।
टल नहीं सकती प्रतिज्ञा किन्तु यह, राज्य पाऊँगा न यदि मैं लौट घर" ।२५१।

पार्थ के सुन वचन यह सहदेव भी भुज उठा बोले—"रहा मैं शपथ कर।
सीस पर आदेश भैया भीम का, शकुनि का मैं ही बनूँगा प्राण-हर" ॥२५२॥

इस तरह ले पाण्डुपुत्र सभी शपथ, शीघ्र ही कुरुगुरुजनों के छू चरण।
विपिन को प्रस्थित हुए भर रोष में, पा सबों के मूक ही आशीर्वचन ॥२५३॥

गए द्रौपदी सहित पहन मुनिवसन पाण्डुसुत वन में।
कुन्ती रही विदुर के घर, वृद्धा असमर्थ गमन में ॥२५४॥

पाण्डव-गुण गा पौर रो पड़े, नारद आये तत् क्षण।
कहा निहत होगा चौदहवें हायन में दुर्योधन ॥२५५॥

द्रोण, भीष्म, कृप, विदुर नहीं चारों मिल कुछ कर पाए।
कर्ण, शकुनि, दुर्योधन सानुज जा न सके समझाए ॥२५६॥

एक वक्र को भी न सन्त मिल चार बना ऋजु पाते।
यहाँ एक से एक बड़े थे कुटिल चार मद—माते ॥२५७॥

एक डुबा देता तरि को, एकत्र यहाँ थे चार।
प्रतिनिविष्ट मूर्खों से तो ब्रह्मा भी जाते हार ॥२५८॥

———

सोपान ७

द्यूत-पराजित पाण्डव हास्तिनपुर से बाहर गए निकल।
भृत्य इन्द्रसेनादि रथों पर बिठा स्त्रियों को चले सकल ॥१॥

यत्र तत्र सर्वत्र पौर शोकार्त्त लगे कहने तज भय—
"आज हमें मिल गया द्रोण, कृप, भीष्म, विदुर सबका परिचय ॥२॥

दंभी, भीरु, विलासी चारो बैठ राज-सुख चखते हैं।
होता है अन्याय घोर चुप ये बन क्लीब निरखते हैं ॥३॥

दुर्योधन, दुःशासन, सौबल, कर्ण चार ये पापी खल।
आग लगा बैठे कुरु-कुल में, रहा हमारा घर, पुर जल ॥४॥

जहाँ आ जुटे ऐसे पापी एक दो नहीं पूरे चार।
वहाँ रहेगा कैसे धन, परिवार, शान्ति, आचार, विचार ॥५॥

जहाँ रहेगा दुर्योधन आएगा निश्चय वहाँ प्रलय।
हम जाएँगे वहीं, गए हैं जहाँ सपरिजन पाण्डु-तनय" ॥६॥

समझा बुझा बहुत पौरों को धर्मराज ने लौटाया।
साथ न कुछ त्यागी विप्रों ने तजा, उन्हें वन ही भाया ॥७॥

चले युधिष्ठिर मुँह ढक, भुज-युग भीम देखते बारं-बार।
अर्जुन सिकताकण बिखराते, नकुल धूलिधूसरिताकार ॥८॥

लिप्तवक्त्र सहदेव, पार्षती शिरोरुहावृत रुदित-नयन।
रौद्र, याम्य सामों का करते धौम्य सकुशकर पारायण ॥९॥

उल्का-पात हुआ, अम्बर में चमक उठी निर्मेघ तडित्।
काँपी धरा, शृगाल रो उठे, हुई राजधानी शंकित ॥१०॥

ज्यों अनाथ साकेत हुआ था राम गए जब सानुज बन।
हुआ हस्तिनापुर वैसा ही चले विपिन जब पाण्डवगण ॥११॥

पहुँचे गुरु के दुर्योधन, दुःशासन, सौबल, कर्ण निकट।
एक द्वीप वे दिखे पाण्डुसुतभय-सागर के बीच विकट ॥१२॥

कहा द्रोण ने—"पाण्डव वन से लौट सबों को देंगे मथ।
कर लो सब सुख-भोग, याग तब तक, न और है कोई पथ" ॥१३॥

"बुला पाण्डवों को बन से सत्वर अजातरिपु को दें राज्य।
दुर्योधन को बन्दी कर घोषित कर दें कुरु-कुल का त्याज्य ॥१४॥

कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन माँगें तज मति उद्धत।
सभा बीच द्रौपदी, युधिष्ठिर, भीमार्जुन से क्षमा प्रणत" ॥१५॥

विदुर और संजय ने मिल यह आम्बिकेय को समझाया।
भीमार्जुन-केशव-बल बतला, किन्तु न उन्हें तनिक भाया ॥१६॥

कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन बैठे फिर चारों खल।
लगे सोचने किस प्रकार निर्मूल नष्ट हो पाण्डव-दल ॥१७॥

कहा कर्ण ने—"दंशित हो हम चलें शस्त्र, रथ ले अविराम।
अविदित कर आक्रमण पठा दें, शीघ्र पाण्डवों को यमधाम ॥१८॥

परिद्यून, असहाय, तप्त वे जेय, आक्रमण-योग्य अभी।
हो पाएँगे धार्त्तराष्ट्र हम शासक ससुहृद् अभय तभी" ॥१९॥

परामर्श सूतज का सुन ले अस्त्र-शस्त्र चढ़ सब निज-रथ।
चले पाण्डवों के वधार्थ संरब्ध, दर्प में चूर वितथ ॥२०॥

दिव्य दृष्टि से देख योजना यह तब तक आ पहुँचे व्यास।
रोक सबों को गए जहाँ थे बैठे प्रज्ञाचक्षु उदास ।।२१।।

कहा—"यही हो गया अशिव, जो गए द्यूतजित पाण्डव वन।
दुर्योधन जा रहा और करने उनका प्रच्छन्न हनन ।।२२।।

रोको इसे, नहीं तो वन में जा यह प्राण गँवाएगा।
उन्हें न मार सकेगा, निज अघ का फल द्रुततर पाएगा ।।२३।।

पुत्र ! प्रजा, पुर, राष्ट्र, परिजनों का यदि चाह रहे कल्याण।
लो चुप संमति भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और संजय की मान" ।।२४।।

कहा अम्बिकासुत ने—"मुनिवर ! समझा उसे चुका मैं हार।
स्वयं आप ही उसे कृपा कर समझा दें यह किसी प्रकार ।।२५।।

बात विदुर की सुन मैं तज निज मोह समझ सब जाता हूँ।
पर कुसंग से बुद्धि हीनतर उसकी बदल न पाता हूँ" ।।२६।।

कहा व्यास ने—"यहाँ आ रहे हैं मैत्रेय अभी भगवान्।
उनसे ही यह करो प्रार्थना", यह कह स्वयं किया प्रस्थान ।।२७।।

दिखे तुरत मैत्रेय, नृपति ने पूछा कर सत्कार कुशल—
"भगवन् ! कैसे पाण्डुतनय हैं, कैसा काम्यक, कुरुजांगल" ।।२८।।

बोले ऋषि—"कुरुराज ! पाण्डुसुत रहते जहाँ जटाजिनधर।
ऋषि मुनियों के लिए बना वन वह सत्संगति का निर्झर ।।२९।।

हुआ तुम्हारे और भीष्म के जीते जी यह घोर अनय।
पिता निग्रहानुग्रह-क्षम तुम, पाण्डव, कौरव-तुल्य तनय ।।३०।।

किया तुम्हारे तनुजों ने आचरण सभा में दस्यु-समान।
जन-जन में सर्वत्र तुम्हारा चलता यह अपयश-आख्यान" ॥३१॥

दुर्योधन की ओर तनिक मुड़ ऋषि ने पुनः कहा सप्रेम—
"महाभाग ! तुम स्वयं विचारो किस में योग तथा है क्षेम ॥३२॥

द्रोह पाण्डवों से मत ठानो, रहे न तुम उनको पहचान।
स्वयं तुम्हारा, उनका, कुल का, जग का इसमें है कल्याण ॥३३॥

पाण्डव हैं नरसिंह, वज्रदृढ़, गज-सहस्र-बल, सत्यप्रतिष्ठ।
हन्ता कामरूप क्रव्यादों, सुरारातियों के पापिष्ठ ॥३४॥

जरासंध नृप, बक, हिडिम्व, किर्मीर भीम से हुए निहत।
अनुज जिष्णु हैं, सखा कृष्ण वृष्णीश्वर, श्याल स्वय पार्षत ॥३५॥

सब अवध्य वे वीर युद्ध में, मर्त्य न सकता उनको जीत।
कहना मेरा मान मन्यु तज सन्धि करो, हो विश्व अभीत" ॥३६॥

सुना रहे मैत्रेय मधुर दुर्योधन को थे सान्त्ववचन।
ताल जांघ पर ठोक रहा कर से था वह स्मयमानवदन ॥३७॥

पद-नख से धरती कुरेदता, देता ऋषि की ओर न ध्यान।
उत्तर में कुछ भी न बोल सोपेक्ष देख करता अपमान ॥३८॥

दिया शाप मुनि ने—"सुनता तू नहीं ध्यान दे मेरी बात।
किन्तु पाप से तेरे होगा यहाँ महाभारत उत्पात ॥३९॥

उस में तू पाएगा अपने गर्व, अवज्ञा का इस फल।
गदाघात से ऊरु चूर जब भीम करेंगे तेरा खल" ! ॥४०॥

सुन बोले धृतराष्ट्र—"पुत्र को मेरे क्षमा करें मुनिवर"।
लौटे मुनि कह—"संधि करे, तो शाप न पाएगा कुछ कर" ।।४१।।

जान प्रव्रजित पाण्डुसुतों को काम्यक पहुँचे सभी स्वजन।
भोज, वृष्णि, अन्धक, केकय, पंचाल, चेदि के भूपति गण ।।४२।।

कोस सभी धृतराष्ट्र-सुतों को वासुदेव को आगे कर।
घेर युधिष्ठर को बोले—"क्या करें, आप बोलें कुरुवर !" ।।४३।।

धर्मराज बोले—"मेरा है विनय बन्धुओं से सब यह।
अभी धर्म से बँधा अवश मैं, तेरह वर्ष रहें सब सह" ।।४४।।

कहा द्रौपदी ने—"मेरा पति, पुत्र न कोई भ्राता है।
पिता, बन्धु या तुम विपदा में दिखा न कोई त्राता है ।।४५।।

द्रुपद पिता, पार्षत भ्राता, जिसके पाण्डव पति पाँच अमर।
सखा कृष्ण, वह गई घसीटी नग्न सभा में केश पकड़ !।४६।।

भूल न पाऊँगी जीवन में किया कर्ण ने जो अपमान।
टुकुर टुकुर सब ताक रहे थे स्वजन अचल बन उपल-समान ।।४७।।

स्त्री–मर्यादा, निज प्रभुत्व, भ्रातृत्व, सख्य थे कारण चार।
किसी एक को भी गुनते, तो लेते माधव ! मुझे उबार ।।४८।।

यह कह अश्रु लगी बरसाने और पोंछने रो रो नेत्र।
भींगा तन, रुँध गया कण्ठ, वह काँप उठी ज्यों कदली, वेत्र ।।४९।।

कहा कृष्ण ने—"कर्ण, शकुनि, दु:शासन दुर्योधन का रक्त।
भूमि पिएगी, और उन सबों का भी जो हैं उन से सक्त ।।५०।।

धर्मराज साम्राज्य करेंगे अवधि बीतते सब को मार।
दुष्ट वध्य हैं, धर्म सनातन से रक्षित है यह संसार ॥५१॥

तेरी भाँति विलाप करेंगी कामिनियाँ कौरव-दल की।
देख पार्थ-शर-पातित पतियों को शय्या पर भूतल की ॥५२॥

गई घसीटी जिन नीचों से तुम नंगी कर, बाल पकड़।
शीर्ष भूलुठित उनके नोचेंगे श्वा, गृध्र घसीट, झगड़ ॥५३॥

हैं अनन्य अर्जुन मुझ से, मैं हूँ अर्जुन से बहन! अनन्य।
हम दोनों का तत्त्व न कोई कभी जान पाया है अन्य ॥५४॥

शत्रु, मित्र अर्जुन का मेरा भी समान है वैरी, मित्र।
नर-नारायण ऋषि हम दोनों तुल्य पराक्रम, तुल्य-चरित्र ॥५५॥

तजो शोक, जो होगा पाण्डवशक्य, करूँगा मैं सब वह।
सभी राज्ञियों की राज्ञी होओगी, अभी रहा हूँ कह ॥५६॥

गिरे गगन, हो शीर्ण हिमाचल, खण्ड खण्ड हो धरा सकल।
शुष्क जलधि हो जाए, मेरा प्रण न कभी यह सकता टल" ॥५७॥

सुन केशव का प्रण, फाल्गुन की ओर द्रौपदी ने देखा।
शान्त सव्यसाची के मुख पर खिंची एक निश्चय-रेखा ॥५८॥

बोले वे—"रोओ न सुनयने! साथ हमारे, मधुसूदन।
होकर सत्य रहेंगे इनके आनन से जो कढ़े वचन" ॥५९॥

धृष्टद्युम्न बोले—"तेरी पीड़ा से हम भी व्यथित असीम।
दुर्योधन दुःशासन को मारेंगे निठुर गदा से भीम ॥६०॥

शकुनि-हनन सहदेव करेंगे और कर्ण का वध अर्जुन।
रोती तुम जिन से, रोएँगी दयिताएँ अदयों की उन।।६१।।

काल शिखंडी गंगासुत का, स्वय द्रोण का मैं हूँगा।
सखा हमारे कृष्ण, निकृति का इस अवश्य निष्कृति लूँगा"।।६२।।

कहा कृष्ण ने—"दुःख है कि मैं नहीं द्वारका में था तब।
द्यूत कौरवों ने ठाना था बुला आप लोगों को जब।।६३।।

स्त्रियाँ, अक्ष, आखेट, मद्य हर लेते मति सब की ये चार।
इन व्यसनों में कभी कहीं पड़ना न उचित है किसी प्रकार।।६४।।

मैं तज था आनर्त्त सौभपुर गया शाल्व-वध-हेतु उधर।
उसी समय दुर्भाग्य आ जुड़ा, हुआ शकुनि का द्यूत इधर।।६५।।

पहुँच अक्ष के पूर्व अन्यथा मैं कुरुओं को समझाता।
दुर्योधन को बन्दी करता, या लड़ यमपुर पहुँचाता।।६६।।

कभी नहीं यह कूटद्यूत मैं किसी भाँति होने देता।
नल-दमयन्ती-कथा सुना मैं पहले ही चेता देता"।।६७।।

लौट द्वारका गए सबों को सान्त्वित कर इस विधि माधव।
भीम युधिष्ठिर अभिवादित थे, परिष्वक्त मध्यम पाण्डव।।६८।।

माद्रेयों ने नमन, धौम्य ने किया वृष्णि-पति का संमान।
अश्रु-वारि-धारा से अर्चन पाञ्चाली ने सस्मित, म्लान।।६९।।

गए साथ अभिमन्यु, सुभद्रा केशव के काञ्चन-रथ पर।
द्रौपदेय भी मातुल के ही संग गए नाना के घर।।७०।।

साथ बहन के चेदि-देश-नृप धृष्टकेतु लौटे निजपुर।
लौटे केकय आदि बन्धु बान्धव भी देकर स्नेह प्रचुर ॥७१॥

किया पाण्डवों ने तब काम्यक त्याग द्वैत वन को प्रस्थान।
आर्त्तनाद कुरुजांगल की जनता ने दुःखित किया महान् ॥७२॥—

"हा स्वामिन् ! हा धर्म ! हमें तज आप कहाँ अब जाते हैं ?।
पिता नहीं पुत्रों को तजता, हम में क्या अघ पाते हैं ? ॥७३॥

दुर्योधन, दुःशासन सौबल कर्ण सबों को है धिक्कार।
छीना पाण्डुसुतों का जिन ने इन्द्रप्रस्थ का भी अधिकार" ॥७४॥

बिदा किया अर्जुन ने समझा उन पौरों को स्नेह-बिभोर।
और सपरिजन सानुग पाण्डव चले द्वैत—कानन की ओर ॥७५॥

सुन वनवासी सिद्ध, तपस्वी वहाँ अर्घ्य बहुविधि लाए।
स्वयं एक दिन सहसा मुनिवर माकण्डेय वहाँ आए ॥७६॥

कहा—"राम को देखा मैं ने ऋष्यमूक गिरि पर रहते।
शक्र-तुल्य हो धर्म-बुद्धि से सानुजदार विपद सहते ॥७७॥

नृप अलर्क, नाभाग, भगीरथ, काशि-करूष-प सत्यव्रत।
हुए एक से एक विजेता, रहे किन्तु नित धर्म-निरत ॥७८॥

तुम पाँचो पाण्डव तप कर सप्तर्षि-तुल्य हो विश्व-प्रथित।
दीप्ततेज हो हरो भार धरती का इस कौरव-पीड़ित" ॥७९॥

बिदा माँग उत्तर को प्रस्थित मार्कण्डेय हुए यह कह।
धर्मराज को दिया दाल्भ्य बक ने प्रबोध तब क्लेशापह— ॥८०॥

"अत्रि, अंगिरा, भृगु, अगस्त्य, कश्यप, वशिष्ठ वंशों के द्विज।
इस वन को कर रहे पूत तुम से रक्षित, पुण्यों से निज ॥८१॥

बिना ब्राह्म बल के न क्षात्र बल क्षम होता क्षिति-शासन में।
तेज पुरोहित, मन्त्री का रहता प्रदीप्त सिहासन में ॥८२॥

विपिनवास का लाभ उठाओ, दुःसंगति का कर वर्जन।
ब्राह्म तेज का क्षात्रशक्ति के साथ करो क्रमशः अर्जन" ॥८३॥

जामदग्न्य, नारद, पृथुश्रवा, कश्यप, भालुकि, द्वैपायन।
इन्द्रद्युम्न, कृतचेता, शौनक, मुञ्ज, सुहोत्र, होत्रवाहन ॥८४॥

कर्णश्रवा, सहस्रपाद, लवणाश्व, ऊर्ध्वरेता कृतवाक्।
स्थूणकर्ण, हारीत, विभावसु, अग्निवेश्य, बृहदश्व, सुवाक्। ८५॥

वृषामित्र जैसे अनेक भूदेव तपोरत वन में रह।
शक्रसमान अजातशत्रु को सन्मति देते धर्मावह ॥८६॥

बैठ एक दिन पाण्डव थे संलाप कर रहे सायंकाल।
कहा द्रौपदी ने अजातरिपु से गम्बु भर विलुलित-बाल ॥८७॥

"अजिन पहन बन चले आप जब सह-परिजन थे त्याग नगर।
कर्ण, शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन दिखते थे नन्दिततर ॥८८॥

इन चारों की आँखों से आँसू की एक न बूँद गिरी।
व्याकुलता दिख रही शेष कुरुओं में भी थी भरी निरी ॥८९॥

देख सुखार्ह भीम, अर्जुन, सहदेव, नकुल को भी दुःखित।
होता है आश्चर्य, न होते आप तनिक भी कभी व्यथित ॥९०

गज-सहस्र-बल भीम आप के ही कारण सब सहते हैं।
अर्जुन अनुज सहस्रबाहु-सम बली बने मृदु रहते हैं ॥९१॥

योग्य दण्ड के केवल कौरव, नहीं क्षमा के हैं वे पात्र।
मुझे ब्राह्म बल तो दिखता है वन्ध्य, सफल लगता बस क्षात्र ॥९२॥

दुर्योधन की ऋद्धि, आप की देख विपद् संशय होता।
छल-बल-वश सुख, विभव; पुण्य, विधि, ईश्वर को बालिश ढोता ॥९३॥

तजा कौन सा पुण्य आप ने? किया कौन सा था दुष्कृत?
दुर्योधन ने किया कौन सा पुण्य? कौन सा तजा दुरित" ?॥९४॥

क्रुद्ध भीम ने पक्ष द्रौपदी का ले तर्क किया प्रस्तुत—
"हुए किसी अपराध के नहीं कारण आप राज्य से च्युत ॥९५॥

दुर्योधन ने राज्य न विक्रम से, न सुकृत से यह पाया।
अक्षकूट यह कौन नही जानता—शकुनि की थी माया ॥९६॥

गाण्डीवी से त्रात राज्य क्या छीन शक्र भी सकते हैं।
क्या आमिष छीनने सिंह का गीदड़ पास फटकते हैं ?॥९७॥

उसी समय मारा न खलों को सभा बीच, अनुताप यही।
किया न दण्डित पापिष्ठों को तुरत, हो गया पाप यही ॥९८॥

नीच, अल्पतरबल हम से हो छीन राज्य है भोग रहा।
मुझ से या प्रतिविन्ध्य-जननि से यह न जा रहा रोग सहा ॥९९॥

कर सकते अज्ञातवास द्रौपदी और हम पाण्डव गण?
महाशाल, रवि, मेरु, हिमाचल का संभव क्या प्रच्छादन? ॥१००॥

बीते तेरह मास कष्टमय, वर्ष इन्हें माने तेरह।
दुर्योधन से छीन करें निज अर्ध राज्य, मत मेरा यह" ॥१०१॥

कहा युधिष्ठिर ने—'दुर्विद है धर्म, करूँ उसका लंघन ?
कर समय का पालन धृति से, मेरा तो यह कहता मन ॥१०२॥

द्रोण, भीष्म, कृप यद्यपि कौरव पाण्डव दोनों के हित सम।
प्राण-मोह तज राज-पिण्ड-हित समर करेंगे पर अनुपम ॥१०३॥

ये दिव्यास्त्र-निपुण अजेय हैं इन्द्रसहित देवों से वीर।
शल, जलसंध, द्रौणि, दुर्योधन, भूरिश्रवा सभी रणधीर ॥१०४॥

कर्ण अमर्षी है अभेद्यकवचावृत संतत अतिसंरब्ध।
सर्वशस्त्रविद्, अनाधृष्य, मैं देख उसे रह जाता स्तब्ध ॥१०५॥

मुझे सोच उसका कर-लाघव नींद न सुख की आती है।
उसकी ही चिन्ता मुझको सब से बढ़ सदा सताती है" ॥१०६॥

तभी महायोगी सत्यवतीतनय स्वयं आ पहुँचे व्यास।
कहा—"विदित वह, मुझे तुम्हारे मन में जो बैठा है त्रास ॥१०७॥

द्रोण, भीष्म, कृप, कर्ण, द्रौणि, दुर्योधन, दुःशासन का भय।
अभी तुम्हारा मिटा, बना निःसंशय, करता तुम्हें अजय ॥१०८॥

करो प्रतिस्मृति विद्या मुझ से प्राप्त, मूर्त्त यह सिद्धि स्वयम्।
सिद्ध इसे कर अर्जुन होंगे शत्रुनाश में निश्चित क्षम ॥१०९॥

ये कुबेर, यम, वरुण, इन्द्र शिव के समीप जब जाएँगे।
इस विद्या के ही बल से दर्शन उनका कर पाएँगे ॥११०॥

अर्जुन नारायण-सहचर नर, जिष्णु, देव शाश्वत, अच्युत,।
अस्त्र शस्त्र देवों से पा ये कर्म करेंगे अति अद्भुत ।।१११।।

त्याग द्वैतवन काम्यक वन के लिए करो फिर तुम प्रस्थान"।
कह यह विद्या दे धर्मज को किया व्यास ने अन्तर्धान ।।११२।।

धर्मराज ने काम्यक जा एकाकी गुडाकेश से मिल।
कहा—"प्रबलतर शस्त्र-प्राप्तिहित तप साधो, मत पड़ो शिथिल ।।११३।।

द्रोण, भीष्म, कृप, द्रौणि, कर्ण को धनुर्वेद चतुरङ्ग विदित।
मानुष, दैव, ब्राह्म अस्त्रों के सब प्रयोग इन से अर्जित ।।११४।।

दुर्योधन करता सभक्ति रहता इनका सब विधि संमान।
ये रहते उसके हित नित तत्पर रण में देने का प्राण ।।११५।।

व्यास-प्रदत्त निगूढ़ साधना मैं देता हूँ तुम्हें बता।
उसे सिद्ध कर जाओ उत्तर इन्द्रकील का पूछ पता ।।११६।।

वृत्र-भीत थे दिए सुरों ने सुरपति को निज-निज प्रहरण।
इस विद्या से उन्हें तुष्ट कर उन अस्त्रों को करो ग्रहण ।।११७।।

तुम पर विजय हमारी निर्भर", यह कह मन्त्र दिया विधिवत्।
आशीर्वाद युधिष्ठिर का पा प्रस्थित अर्जुन हुए तुरत ।।११८।।

पहन कवच साङ्गुलि करत्र, ले असि, गाण्डिव, तूणी अक्षय।
द्विजों, भाइयों और प्रिया की सुन वाञ्छाएँ, मंगलमय ।।११९।।

हिम-गिरि तक जा और गन्धमादन से भी कुछ आगे बढ़।
रुके "तिष्ठ" गम्भीर गिरा सुन इन्द्रकील पर्वत पर चढ़ ।।१२०।।

वृक्षमूल में देखा बैठे तेजस्वी हैं एक जटिल।
कहा उन्होंने—"तपोभूमि यह, फेंको निज शस्त्रास्त्र अखिल" ।।१२१।।

देख किन्तु कुन्तीसुत का संकल्प सुदृढ़ वे बोले हँस—
"मैं सुरपति हूँ, शिव को पहले करो भक्ति के अपनी वश" ।।१२२।।

अन्तर्हित इतना कह वासव हुए, पार्थ शिव-ध्यान-निरत।
सुन कठोर तप उनका शिव ने स्वयं परखना चाहा व्रत ।।१२३।।

अर्जुन ने देखा वराह आ वन्य एक उन पर झपटा।
ज्यों ही बाण चलाया उस पर एक किरात वहाँ प्रकटा ।।१२४।।

उसने भी तत्क्षण छोड़ा शर और गिरा वह हत शूकर।
"यह मेरा आखेट" प्रश्न पर इस छिड़ गया तुमुल संगर ।।१२५।।

बाण, शक्ति, असि, वृक्ष, शिला, भुज, मुष्टि पार्थ के सब प्रहरण।
वन्ध्य हुए उस वनचर पर, तब जय ने शिव का किया स्मरण ।।१२६।।

रुद्र प्रकट हो बोले—"अर्जुन! पूर्व जन्म के हो तुम नर।
तेज, वीर्य में तुम नारायण के, मेरे सम, नहीं अवर ।।१२७।।

अस्त्र पाशुपत लो अनन्य तुम अर्ह, अस्त्र के इस अनुपम।
हैं इससे अनभिज्ञ वायु, वा वरुण, महेन्द्र स्वयं वा यम ।।१२८।।

सहसा किन्तु न प्रयोक्तव्य यह, कर सकता त्रिभुवन का नाश।
कोई नहीं अवध्य अस्त्र का इस" कह ईश गए कैलाश ।।१२९।।

अन्तर्हित शिव को संमुख ही देख पार्थ थे विस्मित, हृष्ट।
"धन्य हुआ मैं, स्वयं पिनाकी हुए प्रकट हो मुझसे स्पृष्ट ।।१३०।।

वे कृतार्थ आहव में मुझसे हुए, मुझे है यह विश्वास।
मिला पाशुपत, हुए विजित रिपु, पूर्णकाम मैं, सफल प्रयास" ॥१३१॥

पार्थ सोच यह रहे थे कि दिक्पाल वहाँ आ पहुँचे चार।
वरुण, कुबेर, और यम पहले स्वयं इन्द्र तब सह-परिवार ॥१३२॥

यम ने दण्ड कठोर, वरुण ने पाश, धनद ने प्रस्वापन।
दिये सबों ने निज निज आयुध और साथ यह आश्वासन—॥१३३॥

"कुन्तीसुत! नारायण-सहचर नर तुम प्रत्न देव ईशान।
धरती पर उतरे करने को देव-कार्य केवल सुमहान्" ॥१३४॥

"मातलि रथ ले आएँगे उससे आना सुरलोक सदेह।
अस्त्र वहीं दूँगा निज तुम को—देवराज बोले सस्नेह" ॥१३५॥

ज्यों अदृश्य दिक्पाल हुए, मातलि रथ ले आए सविनय।
कर प्रणाम, प्रस्थित हिमगिरि को, पहुँचे अर्जुन इन्द्र-निलय ॥१३६॥

अर्धासन दे उन्हें इन्द्र ने स्वय इन्द्र-सम अपर उदित,।
देव-सभा में नृत्य-गीत से स्वागत अद्भुत किया मुदित ॥१३७॥

दिव्यास्त्रों का वज्रादिक संवत्सर पाँच दिया शिक्षण।
चित्रसेन ने सिखा जिष्णु को दिया गान, वादन, नर्त्तन ॥१३८॥

कर सोलह श्रृङ्गार उर्वशी एक रात मन्मथ-पीड़ित।
समागमोत्सुक चित्रसेन-प्रेषित आई सुरपति-प्रेरित ॥१३९॥

"शची-तुल्य माँ मेरी तुम"—बोले नतमुख व्रीडित फाल्गुन।
अप्रत्याशित सुन वाणी उर्वशी हुई परिभव-अकरुण ॥१४०॥

"बनो षण्ड, नर्त्तक स्त्रीगण में" भृकुटि वक्र कर शाप दिया।
सुरपति ने सान्त्वित अर्जुन को निर्जन में इस भाँति किया ॥१४१॥

"सत्तम ! तुम से पृथा सुपुत्रा हुई, विजित धृति से ऋषि गण।
भीषण शाप यही होगा अज्ञातवास में वर, भूषण" ॥१४२॥

अर्जुन को उपविष्ट इन्द्र के अर्धासन पर सुर-पूजित।
कभी पर्यटन-पर महर्षि लोमश मुनि देख हुए विस्मित ॥१४३॥

कहा वृत्रहा ने—"ब्रह्मर्षि ! न पार्थ मर्त्य ये साधारण।
कुन्ती-सुत-देवकी-तनय-द्वय ऋषि पुराण नर-नारायण ॥१४४॥

इन दोनों का पूर्व देह में रहा तपोवन तीर्थ परम।
सिद्ध-सेव्य, सुरसरित्-प्रसू, मुनि-सुर-अदृश्य बदरो आश्रम ॥१४५॥

करना है मेरे नियोग से भूमि-भार का इन्हें हरण।
वर-गर्वित दानव, निवात-कवचों का पातालस्थ हनन ॥१४६॥

दृष्टि-दग्ध कर सकते उनको कृष्ण, स्वयं जो देव कपिल।
हरा अन्यथा उन्हें न पाएँगे रण में सुर भो सब मिल ॥१४७॥

किन्तु कृष्ण क्यों करें कष्ट ? हो गृहीतास्त्र मुझ से अर्जुन।
गुरु-दक्षिणा चुकाने में हैं उन्हें मार मेरो सुनिपुण ॥१४८॥

देव-कार्य यह कर, गंगा, सुत द्रोण-हेतु बन स्वयं अजय।
मर्त्य लोक लौटेंगे अर्जुन, पाण्डव रहें अचिन्त, अभय ॥१४९॥

करें तीर्थ-यात्रा तब तक सब, राज्य लौट घर पाएँगे।
क्षेम योग रह साथ स्वतप से उनका आप निभाएँगे" ॥१५०॥

अर्जुन की उपलब्धि विरल यह सत्यवती-नन्दन से सुन।
लिया अम्बिका-सुतने भय, आशंका से अपना सिर धुन ॥१५१॥

बोले—"संजय! अर्जुन के आगे सकता है कौन ठहर।
द्रोण, भीष्म या द्रौणि कर्ण, ठानेगा उन से कौन समर? ॥१५२॥

खाण्डव में था तृप्त अग्नि को किया, इन्द्र भी हुए विजित।
राजसूय में सब राजे भूमण्डल के हो गए मुदित ॥१५३॥

रह जाए कोई प्रहार सह स्वस्थ वज्र के शैल-शिखर।
किन्तु छोड़ते शेष न कुछ भी अर्जुन के नाराच प्रखर ॥१५४॥

संजय बोले—"सत्य आप की है राजन्! आशंका, भय।
मन्यु पाण्डवों में कृष्णा के धर्षण से उपजा अक्षय ॥१५५॥

वे न भूलते कर्ण और दुःशासन के कटु बचन-गरल।
वैर-शमन-हित जलता उनमें रहता अविरत कोपानल ॥१५६॥

अष्टमूर्त्ति से भी न पराजित हो पाया जो धन्वी नर।
कौन अपर साहसी ठान उस से सकता भू पर संगर? ॥१५७॥

गाण्डीवी से धनुर्युद्ध में तुष्ट पिनाकी हुए प्रथम।
निज-निज अस्त्र-प्रदान-हेतु सब लोकपाल तब जुटे स्वयम् ॥१५८॥

पांचाली को कर अपमानित स्वयं कौरवों ने मिल जुल।
कुपित पांडवों को कर घर में सिरजा है यह युद्ध तुमुल ॥१५९॥

दुर्योधन ने जाँघ दिखाई द्रुपद-सुता को थी जिस क्षण।
गदा-युद्ध में ऊरु-भंग का तभी भीम ने ठाना प्रण" ॥१६०॥

बोले तब धृतराष्ट्र—"हठी दुर्योधन है दुर्मति, अविनीत।
ज्येष्ठ कौरवों का जिन, उनकी दिखती स्पष्ट नियति विपरीत ॥१६१॥

कभी न करता मन्दभाग्य वह मेरी संमति का संमान।
कर्ण, शकुनि दुःशासन मिल सब भरते रहते इसके कान ॥१६२॥

सखा, सचिव, रक्षक जिसके हैं कृष्ण, कौन उस से न विजित ?
मैं तो अर्जुन का पशुपति से बाहु-युद्ध सुन हूँ कंपित ॥१६३॥

दिव्य चतुर्विध अस्त्र, चाप गांडीव, धनुर्धर पार्थ स्वयम्।
साथ तेज तीनों का सहने में त्रिभुवन भी है अक्षम" ॥१६४॥

गावल्गणि ने कहा—व्यतिक्रम सहा आप ने क्यों सब जान ?
तब न मोह-वश रोका सुतको, आज हो रहे चिन्ता-म्लान !।१६५॥

वीथि-वीथि में जन-जन कहता—"अन्ध भूप का है सब दोष।
दुर्योधन का क्या प्रभुत्व है ? अभी न उस की सेना, कोष ॥१६६॥

* * * *

भीम एक दिन धर्मराज से बोले हो अति व्यथित वचन—
'काम्यक में अर्जुन-विहीन लगता न तनिक अब मेरा मन ॥१६७॥

दिव्य आयुधों के हित अर्जुन गए आप का मान निदेश।
विदित हमें होता न कहाँ सह रहे धीर वे कितने क्लेश !।१६८॥

नष्ट हुए वे यदि, हम सब पंचाल वीर, सात्यकि, माधव।
प्राण तजेंगे निश्चय ही, कृत-कृत्य सभी होंगे कौरव ॥१६९॥

जिसके बल पर चाह रहे साम्राज्य अवनि का हम सारी।
वही सह रहा आज न जाने कहाँ प्राण-संकट भारी ॥१७०॥

द्यूत-दोष से तात ! आप के पड़ा विवासित हो रहना।
क्षत्रिय का है धर्म न भिक्षा, विपिन-वास-दुख यों सहना ॥१७१॥

तेरह वर्ष बिताऊँ क्यों मैं बनकर दीन विपिन में बस ?
क्यों न बुला मैं पार्थ, कृष्ण को स्वत्व छीन लूँ निज बरबस ?॥१७२॥

कर्ण, शकुनि, दुर्योधनादि को मार करूँ मैं जब जय-घोष।
आप लौट निज राज्य सम्हालें, तब न लोकमत देगा दोष ॥१७३॥

यदि इस में भी लगे पाप, तो भस्म उसे यज्ञों से कर।
सुखी बनें, शठता से हृत निज राज्य शाठ्य से ही हम हर ॥१७४॥

मास, दिवस को बना वर्ष सम देता कृच्छ्र कठिन जीवन।
आपद्-धर्म यही कहता है, आप्तवाक्य, यह वेदवचन ॥१७५॥

दिखता है अज्ञात वास संभव न हमारा कहीं कभी।
दुर्योधन छनवा लेगा अवनि-तल चरों को भेज सभी ॥१७६॥

* * * *

होंगे बारह वर्ष पुनः वनवास-हेतु हम पण के वश।
यह दुश्चक्र रहेगा चलता, कब तक बाँधेंगे ढाढ़स ? ॥१७७॥

और हुए अज्ञातवास में यदि विधिवश हम किसी सफल।
कर बैठेगा द्यूत-हेतु आह्वान पुनः दुर्योधन खल ॥१७८॥

आप प्रतिज्ञा से अपनी ही बँधे न सकते कभी मुकर।
विपिन-वास का कष्ट रहेंगे हम सहते संतत दुस्तर ॥१७९॥

अनुमति दें उस उच्छृंखल का अभी सदलबल अन्त करूँ।
अर्जुन कृष्ण इन्हीं दो को केवल अपना पार्ष्णित्र वरूँ" ॥१८०॥

कहा युधिष्ठिर ने सान्त्वित कर अवरज को—"वत्सर तेरह।
धैर्य धरो, पण हो पूरा, फिर करो चाहते हो जो वह" ॥१८१॥

आए मुनि बृहदश्व तभी, बैठे विशेष पूजा पाकर।
धर्मराज का द्यूतवृत्त सुन कही कथा नल की नृपवर ॥१८२॥

"द्यूताह्वान पठा दुर्योधन पुनः पुनः सब लेगा हर।
मिटा दे रहा यह भी डर मैं ग्लह-विद्या दे बलवत्तर" ॥१८३॥

यह कह अक्ष-हृदय, अश्व-हृदय दोनों दे मुनि हुए व्रजित।
निकट पाण्डवों के चिन्तित त्यों आए नारद विधि-प्रेरित ॥१८४॥

प्रत्युत्थान तथा पूजा पा धर्मात्मज को कहा अगम।
विविध-तीर्थ-माहात्म्य, भीष्म ने जो पुलस्त्य से सुना स्वयम् ॥१८५॥

जब देवर्षि गए, आ पहुँचे तब ब्रह्मर्षि वहाँ लोमश।
कहा—"दिया संदेश आप को है सुरपति ने प्रियतावश ॥१८६॥

हो कृतास्त्र लौटेंगे अर्जुन, देवकार्य कर शीघ्र महान्।
तब तक तीर्थ-भ्रमण, तप, जप कर बनें सबलतर, रहें न म्लान ॥१८७॥

जान रहा मैं सदा आप को लगा कर्ण का रहता भय।
सचमुच है वह महा धनुर्धर, स्कन्द-तुल्य आदित्य-तनय ॥१८८॥

किन्तु पार्थ के षोडशांश के भी न समर में है वह सम।
अर्जुन है अप्रतिभट-पौरुष, अतिस्कन्द,विक्रमी चरम ॥१८९॥

मैं कर दूँगा कर्ण-भीति भी दूर आप की यथासमय"।
सुन पाण्डव तीर्थाटन-हित चल पड़े साथ मुनि के निर्भय ॥१९०॥

शैल गन्धमादन पर पहुँचे जब पाण्डव तीर्थाटन कर।
लौटे अर्जुन पाँच वर्ष रह प्रेष्ठ अतिथि सुरपति के घर ।।१९१।।

वारुण, वैष्णव, सौम्य, ऐन्द्र, वायव्य, पाशुपत या प्रहरण।
पारमेष्ठ्य, आग्नेय, ब्राह्म शस्त्रास्त्रों का कर सविधि ग्रहण ।।१९२।।

धाता, सविता, त्वष्टा, यम, वैश्रवण, प्रजापति, देवेश्वर।
सब से लेकर नाना आयुध, आशीर्वाद, शुभेच्छा, वर ।।१९३।।

कर निवात-कवचों का, मघवा के चिर-रिपु, दुर्दान्त, हनन।
गुरु-दक्षिणा चुका, हो ऋण से मुक्त आत्म-विश्वास-प्रवण ।।१९४।।

अर्जुन से मिल क्षेम योग कह, पूछ हुए पाण्डव प्रमुदित।
तीर्थाटन-रत हुए पुनः निःशंकचित्त विश्वास-सहित ।।१९५।।

सकल तीर्थ जब घूम, द्वैतवन सर पाण्डव पहुँचे सकुशल।
दुर्योधन को लगे चढ़ाने कर्ण, शकुनि मिल दोनों खल—।।१९६।।

"साथ द्वैतवन में मुनियों के पाण्डव रहते है श्री-हीन।
शीतल कर लें हृदय, दग्ध कर दिखा उन्हें अपनी श्री पीन ।।१९७।।

पाण्डव गण देखें ययाति-सम भूमण्डलपति हैं अब आप।
श्री वह, देख जिसे छाती पर लोट जाय वैरी की, साँप ।।१९८।।

भूमिष्ठों को लख दिविष्ठ, सौधस्थ परम सुख पाता है।
धन, सुत, राज्य न पा; रिपु को रोते लख मन इतराता है ।।१९९।।

देख आप का विभव अजिन-वल्कल-धर अर्जुन हाथ मले।
नृप-परिजन के निरख वसन, मणि, कृष्णा का जी और जले" ।।२००।।

बात कर्ण की सुन दुर्योधन बोला—"कैसे यह अनुमति,।
प्राप्त पिता से करूँ ? विदुर देंगे न कभी अपनी सम्मति ॥२०१॥

भीम, द्रौपदी, अर्जुन को देखूँ पीड़ित क्रन्दित बन में।
यही लालसा बहुत दिनों से छायी मेरे भी मन में ॥२०२॥

सार्वभौम भी राज्य हस्तगत कर जो सुख मुझ को मिलता।
पाण्डुसुतों को देख वल्कलित उस से दूना मन खिलता ॥२०३॥

होता मैं कृतकृत्य द्रौपदी को काषायाम्बरा निरख।
पा जाता सुख दिव्य पाण्डुसुत म्लान मुझे जब होते लख" ॥२०४॥

कहा कर्ण ने हँस कर "राजन्! मैं उपाय हूँ बतलाता।
घोष-निरीक्षण भी नृप की कर्त्तव्य कोटि में है आता ॥२०५॥

अतः द्वैतवन के घोषों के करें निरीक्षण-हेतु प्रयाण।
अनुमति मिल जाएगी नृप की इस निमित्त, यह व्याज महान्" ।२०६।

कहा शकुनि ने—"साधु, साधु! यह तो उपाय है सर्वोत्तम"।
अट्टहास कर, हाथ मिला, तीनों खल प्रमुदित हुए परम ॥२०७॥

कर्ण, शकुनि ने विनत घोष-यात्रार्थ किया जब आवेदन।
तब बोले धृतराष्ट्र—"न संप्रति गो-समवेक्षण है शोभन ॥२०८॥

सुना द्वैतवन में ही हैं नरसिंह अभी पाण्डव रहते।
रह समर्थ भी छल-निर्जित मुनि-सदृश तपोरत दुख सहते ॥२०९॥

हों अजातरिपु भले न क्रोधित, भीमसेन हैं अति असहन।
यज्ञसेन की दुहिता तो है केवल तेज। पुञ्ज, दहन ॥२१०॥

जीत चुका बीभत्सु अकेला ही पहले भी धरा सकल।
अब लौटा दिव्यास्त्र-कुशल हो कौरव-दल-हित प्रलयानल" ।।२११।।

पुत्र-मोह-वश दे दी अनुमति किन्तु श्याल से हो अनुनीत।
चला सदल बल दुर्योधन दुर्भाव छिपा अति दम्भ-स्फीत ।।२१२।।

पहुँच द्वैतवन गन्धर्वों से जल-क्रीडा हित टकराया।
चित्रसेन गन्धर्वराज ने लड़ कुरु-बल को बिखराया ।।२१३।।

सूतपुत्र गन्धर्वों से पिट, गया भग्नरथ भाग निकल।
अड़ा रहा रण में दुर्योधन, टूट पड़ा उस पर रिपु दल ।।२१४।।

चित्रसेन ने विकट आक्रमण कर कौरव-सेना से लड़।
सानुज सपरिग्रह दुर्योधन को जीवित ही लिया पकड़ ।।२१५।।

गन्धर्वों से हृत दुर्योधन लगा बिलख करने क्रन्दन।
'मुझे बचाओ गन्धर्वों से कुरु-कुल-तिलक! पृथानन्दन" ।।२१६।।

"कुरु-ललनाएँ, कुरु-पति सानुज गन्धर्वों से हैं ह्रियमाण।
शरणगत हैं धर्मराज भीमार्जुन के, उनका हो त्राण" ।।२१७।।

आर्त्त अमात्यों से सुन यह दयनीय दशा दुर्योधन की।
कहा भीम ने—"उचित चिकित्सा हुई आज उस दुर्जन की" ।।२१८।।

बोले सदय विततक्रतु धर्मज—"यह न दृष्टि है स्वस्थ, उचित।
बात भिन्न कुल-कलह; किन्तु यह कुल-कलंक है, अत्याहित ।।२१९।।

आपस के विरोध में कौरव सौ भाई, हम केवल पाँच।
किन्तु एक सौ पाँच बनेंगे, जब आएगी कुल पर आँच ।।२२०।।

करो मुक्त दुर्योधन को लड़ गन्धर्वों से अभी त्वरित"।
सुन यह अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव हुए चारो प्रस्थित ॥२२१॥

विजित पार्थ से हो विचार निज चित्रसेन ने किया प्रकट—
"दुर्योधन को बद्ध सपरिजन धर्मज के ले चलें निकट ॥२२२॥

वे जो निर्णय देंगे, लूँगा निर्विरोध मैं भी वह मान"।
दोनों दल सहमत हो आए, जहाँ युधिष्ठिर थे यजमान ॥२२३॥

चित्रसेन बोला—"राजन्! जब चला द्वैतवन दुर्योधन।
निरख आपको क्लिशित सुखी होने, सेना सज कर बन ठन ॥२२४॥

बुला मुझे बोले सुरपति—"लाओ उस खल को यहाँ पकड़।
गया द्वैतवन पाण्डुसुतों को दुखी देख सुख पाने जड़" ॥२२५॥

चित्रसेन से कहा युधिष्ठिर ने दुर्योधन को कर मुक्त—
"हूँ कृतज्ञ मैं, किया आपने इस न बन्धु को प्राण-वियुक्त" ॥२२६॥?

प्राण-दान पा दुर्योधन, व्रीडित धर्मात्मज से बोधित।
अनशन कर मरने को उदयत, हुआ अंगपति से रोधित ॥२२७॥

जब लौटा हास्तिनपुर तब फिर उसे भीष्म ने समझाया—
"तात! द्वैतवन की घटना से भी न चेत तुम को आया ?॥२२८॥

दुर्मन्त्रित तुम गए द्वैतवन मेरी रुचि के ही विपरीत।
वहाँ दर्प-वश भिड़ गन्धर्वों से जीवित ही हुए गृहीत ॥२२९॥

सूतपुत्र गन्धर्वों से लड़, हार, समर तज गया निकल।
क्रन्दन-निरत विपन्न छोड़ कर तुम्हें सामने, कातर, खल ॥२३०॥

अपकृत भी पाण्डव जा गन्धर्वों से तेरे हेतु लड़े।
त्याग, कृपा से उनके ही, घर लौट, हुए तुम यहाँ खड़े ॥२३१॥

दिखा तुम्हें तब भी न पाण्डवों और सूत-सुत में अन्तर।
कर्ण पाण्डवों का न पादभाजन हो पाएगा सब कर ॥२३२॥

सन्धि पाण्डवों से कर निर्भय बनो इसी से कहता नित"।
कर्ण और दुर्योधन सुन यह हुए अवज्ञा से प्रस्थित ॥२३३॥

दुर्योधन के प्रत्यायन-हित राधा-सुत ने किया प्रयाण।
विश्व-विजय कर एकाकी निज विरल शौर्य का दिया प्रमाण ॥२३४॥

सच यह था, गन्धर्व-युद्ध से गए भूप थे सभी समझ।
कौरव-पाण्डव-शक्ति एक है, कौन कर्ण से मरे उलझ ?॥२३५॥

किन्तु किया दुर्योधन ने वैष्णव क्रतु इस से हो हर्षित।
शपथ कर्ण ने ली कठोर हो दृप्त धरा को कर धर्षित—॥२३६॥

"जब तक अर्जुन का न करूँगा वध, न पाँव धुलवाऊँगा।
खाऊँगा जलजात न कुछ, आसुर व्रत सदा निभाऊँगा ॥२३७॥

नहीं कहूँगा "नहीं" किसी याचक को कुछ, भी हो याचित"।
यह सुन दुर्योधन ने माना पाण्डुसुतों को कर्ण-विजित ॥२३८॥

स्तवन-निरत था कर्ण एक दिन प्राञ्जलि रवि की ओर निरख।
मध्यंदिन में खड़ा सलिल में तभी वहाँ आए शतमख ॥२३९॥

सूतपुत्र ने पूछा—"क्या दूँ" एक विप्र को देख समक्ष।
"सहज-कवच-कुण्डल-युग"—बोले विप्ररूप वासव अति दक्ष ॥२४०॥

"तुम अर्जुन दोनों कृतास्त्र हो, पर यह कुण्डल कवच सहज।
अर्जुन को न, तुम्हें ही केवल प्राप्त, इसे तुम भी दो तज ॥२४१॥

द्वन्द्व तभी दोनों का होगा न्याय्य, अन्यथा अघ उल्वण।
सहज-अभेद्य-कवच-कुण्डल से युत का किसी अयुत से रण" ।२४२॥

कहा कर्ण ने—"विप्र! हो रहे आप मुझे हैं इन्द्र विदित।
दूंगा मैं दोनों विनिमय में, मुझे आप यदि दें प्रार्थित" ॥२४३॥

"यह न दान, विनिमय; पर तुमने लिया दान का था सत्पण!
डिगे प्राण-भय से तुम उस से आज"—सुना यह कूटवचन ॥२४४॥

दे अमोघ एकघ्न शक्ति द्विज ने ले लिया कवच, कुण्डल।
यह सुन कौरव सन्न रह गए, पड़ी पाण्डवों को पर कल ॥२४५॥

सुरपुर से बीभत्सु पाशुपत, ऐन्द्र आदि ले अस्त्र आ गए।
देख उन्हें चिर तृषित नयन द्रौपदी, पाण्डवों के जुड़ा गए ॥२४६॥

हर्ष, आत्म-विश्वास नया पा, हुए सभी दुख में भी प्रमुदित।
बीती काली रात भाद्रपद की, ऊषा ज्यों हुई अब उदित ॥२४७॥

——

पंचम सोपान

इस भाँति विपिन में बारह वर्ष बिता कर, पाण्डव विराट के यहाँ आ लगे रहने।
तेरहवें में अज्ञातवास करना था, इस लिए बदल निज नाम-रूप दुख सहने ॥१॥

बन गए युधिष्ठिर विप्र "कंक" देवनपटु,
'बल्लव" भोजन-रुचि सूद भीम रिपु-घर्षण।
अर्जुन "बृहन्नला" क्लीब गान-नर्त्तन-विद,
"ग्रन्थिक" हय-विद्या-निपुण नकुल प्रियदर्शन ॥२॥

सहदेव हो गए "तन्तिपाल" पशुपालक,
द्रौपदी "मालिनी" सैरन्ध्री गृहदासी।
कुछ ही दिवसों में निज-निज-सेवा-तत्पर,
अनुचर विराट के हुए सभी विश्वासी ॥३॥

दुर्योधन के चर छान धरा को बोले।
लगता विनष्ट हो चुके पाण्डुसुत वन में।
दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन चारो,
आश्वस्त लगे थे होने क्रमशः मन में ॥४॥

इस बीच सूचना दुर्योधन ने पाई—
"सेनानी, श्याल गया बिराट का मारा।
गंधर्व किसी ने विकट बली रजनी में
आह्वान द्वन्द्व में कर के उसे पछाड़ा ॥५॥

अन्तः पुर में कोई विराट के अद्भुत
सुन्दरी कार्य सैरन्ध्री का है करती।
उसका ही पति कोई गन्धर्व प्रबल है,
कीचक की थी वह नित कुदृष्टि से डरती" ॥६॥

"बस तीन बाहुबल में कीचक के थे सम।
बलराम, भीम, मद्रप—चौंका दुर्योधन—।
क्या भीम बना गन्धर्व, द्रौपदी दासी,
कीचक, उपकीचक गए वध्य जिसके बन ? ॥७॥

तब तो विपत्ति मँड़रा ही रही अभी तक;
हम क्यों न ठान दें अभी मत्स्य से संगर ?
पाण्डव प्रगटेंगे रक्षा के हित उसकी,
गोधन लूटेंगे जब हम उसे विजित कर ॥८॥

"पा चुका युधिष्ठिर से मैं पालन पोषण,
किस भाँति वही दूँ दुर्योधन को आदर"
"यह कह वह करता मेरी सदा अवज्ञा,
लें उस की गौएँ और गर्व दोनों हर ॥९॥

अज्ञातवास में प्रकट हुए यदि पाण्डव;
वनवास पुनः तब बारह वर्ष करेंगे।
अन्यथा दर्प तो भग्न मत्स्य का होगा;
हम राजकोष ही उसको लूट भरेंगे" ॥१०॥

बोला त्रिगर्त्तपति तभी सुशर्मा—"हम को
कीचक, विराट ने किया बहुत है धर्षित।
हम जीत मत्स्य का राज्य बाँट लें दोनों,
प्रतिशोध-हेतु मैं बहुत दिनों से तर्षित" ॥११॥

सोत्साह कर्ण ने इसका किया समर्थन,
दुर्योधन को योजना बहुत यह भाई।
हो व्यूढ़ सुशर्मा ने दक्षिण से द्रुत ही
कर दी विराट पर विकट अहेतु चढ़ाई ॥१२॥

सानुज विराट को बन्दी बना सुशर्मा
ज्यों चला, उसे बल्लव ने घेर गिराया।
"रण-विजित दास" कह कर रस्सी से बाँधा,
पर दया कंक ने कर आ उसे छुड़ाया ॥१३॥

दुर्योधन ने सज इसी बीच निज-सेना,
उत्तर से भी निष्ठुर आक्रमण दिया कर।
सारथि बृहन्नला को ले रथ पर उस से
लड़ने दौड़ा सैरन्ध्री-प्रेरित उत्तर ॥१४॥

पर महारथों को देख कौरवों के वह
डर हुआ भागने को रण से उद्यत जब।
परिचय देकर निज वेष पार्थ ने बदला,
सारथ्य-हेतु वह तत्पर हृष्ट हुआ तब ॥१५॥

यह दृश्य दिखा ज्यों कुछ के मुँह से निकला—
"क्या गाण्डीवी यह स्वयं सामने आया ?
झट धनुर्घोष से शंखनाद ने मिलकर
तब तक उसके, धरती को अखिल कँपाया ॥१६॥

सुन कहा द्रोण ने—"रथ का यह घन-गर्जन,
ज्या-शंख-घोष कहता, अर्जुन ही वह है।
होते न प्रकाशित शस्त्र; मुदित, हर्षित हय
भासित न अग्नि सेन्धन, महान् अशकुन यह ॥१७॥

आ बैठ ध्वजों पर काक रथों के जाते
गज वाजि देख ऊपर करते हैं क्रन्दन।
उल्काएँ गिरतीं, गीध अगिन मँड़राते
ये सभी हमारे हैं विनाश के लक्षण ॥१८॥

उड़ रहे विहग बाएँ से निकल हमारे
पशु, शकुनि भागते भीत, शिवा, श्वा रोते।
रोमांचित लगते आप सबों के भी तन,
विधु, भानु मन्द पड़ते प्रतीत हैं होते ॥१९॥

पीड़ित सब सैन्यों को अर्जुन-बाणों से;
अतिनिशित देख पीछे पछताएंगे हम।
अभिभूत अभी से लगी वाहिनी दिखने
रण-विमुख सैनिकों के मुखपर छाया तम" ॥२०॥

बोला दुर्योधन—"यदि वह है अर्जुन ही
प्रत्यक्ष, पाण्डवों का तब तो टूटा पण।
पूरा न हुआ तेरहवाँ वर्ष अभी तक
बारह वर्षों के लिए जाँय वे फिर वन ॥२१॥

हों मत्स्यराज वा पार्थ हमें लड़ना है,
क्यों द्रोण, द्रौणि, कृप, भीष्म, विकर्ण विमन हैं?"
राधेय कह उठा—कब न हींसते हैं घोड़े?
आचार्य पार्थ का करते वृथा स्तवन हैं ॥२२॥

यदि सभी आप हैं भीत, अकेला ही मैं
शर-शलभों से अर्जुन को छन्न करूँगा।
मैं अवर न उस से कभी, अभी उसका कर
वध कुरुपति की चिन्ताएँ सकल हरूँगा ॥२३॥

हूँ शिष्य आप का, परशुराम का मैं भी,
नैपुण्य न्यूनतर नहीं किसी से मेरा!
अर्जुन सहस्रभुज-सम हो, पर है एकल
आ उसे काल ने आज कर्ण बन घेरा ॥२४॥

वह कुंजर, मेरे प्रखर अस्त्र उल्काएँ,
वह हो महेन्द्र, हैं अशनि किन्तु मेरे शर।
वह नागराज, मैं गरुड स्वयं उस के हित,
वह दावदहन, मैं प्रलय काल का जलधर ॥२५॥

फुफकार रहे हृतमणि अहि-सम अर्जुन को,
नष्टास्त्र-शस्त्र-रथ देखें आ सब कौरव।
चाहें तो ले गोधन लौटें सब सैनिक;
या आज युद्ध का मेरे निरखें गौरव" ॥२६॥

कृप बोले—"एकल ही अर्जुन ने जीता,
उत्तर कुरु भी, खाण्डव भी सुरपति से लड़।
जा दूर द्वारिका बहन हरी हलधर की,
ललकारा द्वैरथ में केशव को भी अड़ ॥२७॥

कर द्वन्द्व पिनाकी को एकाकी जीता,
रह अरथ जयद्रथ, को ससैन्य मथ डाला।
कर गर्व खर्व गन्धर्वराज का एकल,
दुर्योधन की रख लाज विपद् को टाला ॥२८॥

कर नष्ट कालखंजों, निवात-कवचों को,
एकाकी ही सुरपति की पीर हरी है।
एकाकी तुमने किसे आज तक जीता?
उपलब्धि न तेरी, केवल डींग बड़ी है ॥२९॥

जिस से न इन्द्र भी हैं समर्थ लड़ने में
सम्मुख जिस के पड़, पड़ता सब को टरना।
साहस करता जो उस से भी द्वैरथ का
उसका लगता भैषज्य पड़ेगा करना ॥३०॥

आशीविष के तुम डाल तर्जनी मुँह में,
दंष्ट्रा उखाड़ने का दुःसाहस करते।
जंगल में घुस गजपति को पकड़ निरंकुश,
उसकी न पीठ पर भी चढ़ने में डरते ॥३१॥

घृतसिक्त पहन तुम वसन चाहते लंघन,
उद्दीप्त वसा, मेदा से महादहन का।
सर्वांगबद्ध, ग्रीवा में डाल महोपल,
तुम थाह चाहते पाना सिन्धु गहन का ॥३२॥

अकृतास्त्र, सुदुर्बल यदि कृतास्त्र, बलवत्तम
अर्जुन से रण चाहे तो क्या न कुमति वह ?
तेरह वर्षों पर पाशबन्ध से छूटा
छेड़ा, अबुद्धिवश पंचानन संप्रति वह ॥३३॥

प्रान्तर-संवृत ज्वालामुख-तुल्य किरीटी,
अनजाने आ पहुँचे समक्ष उसके हम।
पड़ गए विकट संकट में प्राण सभी के,
पूरी सेना हो व्यूढ़ दिखावे विक्रम ॥३४॥

मैं, द्रोण, द्रौणि, गंगासुत, तुम, दुर्योधन,
हम षड्‌रथ ही मिल बनें पार्थ के प्रतिभट।
ज्यों वज्रपाणि से लड़ते सब दानव-मिल;
एकाकी ही साहस कर मत जाना डट" ॥३५॥

अश्वत्थामा बोले—'जीता गोधन क्या ?
दिखता न आत्म-स्तुति का तेरी कुछ कारण !
है आग जलाती, सूर्य चमकता अकथित,
वसुधा करती वसुषेण ! मौन जन-धारण ।।३६।।

क्षत्रिय न फूलता राज्य द्यूत-जित पाकर,
धृतराष्ट्र-पुत्र हैं अतिनृशंस, कुलघाती।
कृतकृत्य न होता वीर कभी हर इस विधि,
कर कपट बन्धु की न्याय्य दाय की थाती ! ।।३७।।

किस द्वैरथ में है निर्जित हुए युधिष्ठिर,
है विजित भीम, अथवा अर्जुन किस रण से ?
सहदेव, नकुल को लड़कर किसने जीता ?
है इन्द्रप्रस्थ ही छीना किस प्रहरण से ? ।।३८।।

लुंठित हो कर किस भट से, किस आहव में,
कृष्णा रजस्वला गई सभा में लाई ?
अज्ञातवास, वनवास पाण्डवों को ही
था दिया वीर ने किस, कर कहाँ चढ़ाई ? ।।३९।।

प्रत्येक व्यक्ति की एक सहन-सीमा है,
था सह्य न पाण्डुसुतों को कृष्णा-धर्षण।
क्षय-हेतु धनंजय उदित धार्त्तराष्ट्रों के
बातें न बनाओ करो आज अघमर्षण ।।४०।।

निःशेष करेंगे इस सेना को अर्जुन,
सुर, असुर, दनुज, गन्धर्व सबों से दुर्जय।
टूटेंगे जिस एकाकी महारथी पर
यम-धाम पठा देंगे उसको ये निश्चय ॥४१॥

ये कहीं बड़े तुम से प्रख्यात धनुर्धर,
हैं वीर शक्र, हर, चक्रपाणि के ही सम।
मनुजों से मानुष ही अस्त्रों से लड़ते,
देवों से ही दिव्यास्त्रों से रख संयम ॥४२॥

है सत्य, इन्हें आचार्य प्यार करते हैं,
क्या शिष्य न होता सुतसम अपना ही तन ?
तुम और शकुनि फिर निज करतब दिखलाओ,
इस समर-भूमि में भी कर लो दुर्देवन ॥४३॥

जिस पौरुष से था इन्द्रप्रस्थ को जीता,
जिस से पाण्डव-सीता की लाज उतारी।
आ लड़ो दिखा उत्साह वही अर्जुन से,
तुम या तेरे मातुल कुल-मंगल-कारी ॥४४॥

गाण्डीव किन्तु है नहीं फेंकता पासे
द्वापर, त्रेता, कृत; पर तीखे जलते शर।
मानव-तन कोई क्या खा उन्हें सहेगा ?
जिन से विदीर्ण गिरि भी बनते शतकन्दर ॥४५॥

कह देता मैं, अर्जुन से नहीं लड़ूँगा,
जिन की इच्छा हो खाज मिटा लें, वे भिड़।

हाँ! मत्स्यराज यदि अभी यहाँ आए तो
उस का कर दूँगा आज पृथक् धड़ से सिर।।" ४६।।

कुल-वृद्ध भीष्म बोले—"यह कलह अनवसर
गुरु, कृप, गुरु-सुत तीनों के मान्य वचन हैं।
पर क्षात्र धर्म को स्मरण कर्ण बस कर के
इस समय कर रहे रण का अनुमोदन हैं।।४७।।

तेरह वर्षों से पाँच मास बारह दिन,
हैं अधिक बिता प्रत्यक्ष हुए ये पाण्डव।
अवमान-दग्ध बन उग्र विपिन-कष्टों से,
ये आग दृगों से उगल करेंगे ताण्डव।।४८।।

ये यथासमय निज प्राप्य रहेंगे लेकर,
हों क्यों न वज्रधर ही विपक्ष के नेता।
रख ऐकमत्य हम सब कर्त्तव्य-निरत हों;
हैं खड़े सामने प्रकुपित विश्व-विजेता"।।४९।।

दुर्योधन बोला—"राज्य कदापि न दूँगा,
जो कार्य युद्ध-हित हो वह करें पितामह"।
गंगासुत बोले—निर्णय है यह मेरा;
तब सुनें ध्यान से, मैं जो रहा अभी कह।।५०।।

दुर्योधन लौटें चतुर्थांश सेना-युत
गोधन ले, पीछे चतुर्थांश भी जाए।
आधी सेना ले टूटें हम पाण्डव पर,
सब मिल हम उनको यहीं रखें अटकाए।।५१।।

आचार्य मध्य में, बाएँ अश्वत्थामा,
कृप रहें पार्श्व में दाएँ संतत अवहित।
दंशित हो आगे रहें कर्ण सेना के
मैं पृष्ठ भाग की रक्षा में हूँगा स्थित" ।।५२।।

आ तभी समीप गए फाल्गुन विद्युद्गति,
दो बाण द्रोण के छूकर गए चरण-रज।
दो गए श्रवण-युग छू, ज्यों अनुमति लेते,
इस कौशल से भर गया सबों में अचरज ।।५३।।

मथ शत्रु-सैन्य, गोधन विमुक्त कर पहले,
डट गए कर्ण के संमुख आ एकाकी;
दौड़े यह संकट देख अनेक महाभट,
चिन्ता से झट वैकर्त्तन की रक्षा की ।।५४।।

अति कुपित पार्थ शर लगे प्रखर बरसाने,
कौरव-सेना में मची देख यह भगदड़।
सैनिक वसन्त के लगे जीर्ण पत्तों से
गिरने, ज्यों आ पहुँचा प्रलयंकर अन्धड़ ।।५५।।

दावानल सा उद्दीप्त भयंकर क्षण-क्षण
गाण्डीव लगा शतमुख हो आग उगलने।
चीत्कार लगे करने व्याकुल सैनिक सब
सूखे तरुओं से लगे झुलसने, जलने ॥५६॥

भागा विकर्ण, हत, पतित हुआ शत्रुन्तप,
वैकर्त्तन-भ्राता का भू-लुठित हुआ सिर।
कुन्ती-सुत होने लगे उग्रतर क्रमशः
शव लगे लोटने रथियों के पल-पल गिर ॥५७॥

प्रत्यक्ष निपातित देख कर्ण भ्राता को,
भिड़ गया पार्थ से नागराज सा आकर।
अभिमुख उस को पा टूट पड़े अर्जुन भी,
ज्यों गरुड़ नाग पर द्विगुणित वेग दिखाकर ॥५८॥

ढक दिया कर्ण को, भीष्म-प्रभृति योधों को
फाल्गुन ने वाणों की वर्षा बरसा कर।
सब काट गिराए किन्तु कर्ण ने तत्क्षण,
कुरु-सैनिक नाच उठे तालियाँ बजा कर ॥५९॥

क्रमशः दोनों का देख पराक्रम दोनों;
होने प्रचण्डतर लगे और प्रकुपिततर।
मानो गजेन्द्र दो मत्त लड़ रहे हों गुँथ
सब हुए दृश्य यह देख, चित्रवत् क्षण भर ॥६०॥

भुज, ऊरु, वक्ष ग्रीवा, मस्तक विशिखों से
कुरु-पुंगव अर्जुन ने जब विद्ध दिए कर।
हो व्यथित, पराजित, गज गजेन्द्र से जैसे,
तज समर पलायन किया अंगपति ने डर ॥६१॥

प्रज्वलित धनंजय हुए प्रलय-पावक सम,
उनकी न ओर टिक नयन भटों किसी के पाते।
मध्याह्न-ग्रीष्म-रवि मानो घोर घटा को,
तीखी असंख्य किरणों से हों बिखराते ॥६२॥

पट गई धरा योधों, करियों, तुरगों से
ज्यों दिया गया सेनाब्धि शेष द्वारा मथ।
सब लगे सोचने यम आए बन अर्जुन,
रुक सका किसी से कहीं नहीं उनका रथ ॥६३॥

सब एक साथ ही हुए विद्ध दुर्योधन,
दुःशासन, गुरु, कृप, भीष्म, द्रौणि, राधा-सुत।
आधिरथि अमर्षी नष्ट-सूत-हय-रथ हो
बंध हुआ विकल, था शौर्य पार्थ का अद्भुत ॥६४॥

तब कृप के हस्तावाप, चाप, शक्ति, कवच,
हय, गदा, सूत, रथ लिए पार्थ ने सब हर
चुप देख हटा निरुपाय रिक्त-कर उनको,
अर्जुन के संमुख से कुरु-वीर गए टर ॥६५॥

आ गए निरख यह द्रोण पार्थ से लड़ने
घिर पार्थ-शरों से संकट-ग्रस्त हुए पर।
पहुँचे उनके त्राणार्थ स्वयं जब गुरु-सुत
तब दिया पार्थ ने उन्हें पलायन-अवसर ॥६६॥

अश्वत्थामा को देख पार्थ से द्वैरथ,
निर्भीक छेड़ते युद्ध हुए सब विस्मित।
निःशेष हो गए पर शर द्रोण-तनय के,
रह सके न अभिमुख अतः पार्थ के वे स्थित ॥६७॥

राधेय तभी टंकार धनुष आया फिर,
यह देख पार्थ का कोप हो गया द्विगुणित।
वे बोले—"अब हूँ मुक्त धर्म-बन्धन से,
फल आज मिलेगा तुम्हें पाप का समुचित" ॥६८॥

बोला अंगाधिप- 'शूरंमन्य बहुत, तुम,
मैं दूर करूँगा आज तुम्हारा सब भ्रम।
लड़ लें आ तेरे साथ स्वयं वासव भी,
जगती मेरा भी देखे आज पराक्रम" ॥६९॥

अर्जुन बोले—"धिक्! अभी-अभी तो थे तुम
सम्मुख से मेरे-समर-भूमि तज भागे!
इससे ही जीवित रहे, अनुज का तेरे
पर क्या न किया है वध तेरे ही आगे! ॥७०॥

अतिरिक्त तुम्हारे कौन अनुज को मरते।
भी देख त्याग रण करता आत्म-प्रतारण ?"
यह कह अर्जुन ने शर अनन्त बरसाए,
कर दिया कर्ण ने सब का किन्तु निवारण ॥७१॥

तब काट कर्ण के धनुष, शक्ति; अनुगों को
यमलोक पठा, बाणों से विद्ध किया उर,
आँखों में जिस से तिमिर कर्ण की छाया,
भागा उत्तर की ओर मूक, पीडातुर ॥७२॥

तब धार्त्तराष्ट्र संघटित सभी हो प्रकुपित,
शर लगे पार्थ पर एक संग बरसाने।
सब महारथी भट उमड़ सभी ओरों से
पूरी सेना ले एक वीर पर छाने ॥७३॥

दुःशासन, दुःसह, द्रौणि, विकर्ण, विविंशति,
दुर्योधन, कृप, गुरु, भीष्म, कर्ण सब ने मिल।
फिर घेर जिष्णु को लिया क्रुद्ध हो वध-हित,
निःशेष साथ सर्वांग पड़ी सेना पिल ॥७४॥

पर धन्य सव्यसाची थे ! तनिक नहीं डिग,
हँस-हँस नानाविध भीषण बाण चलाकर।
कर समर-भूमि को दिया कर्दमिल, तुन्दिल,
सिर काट सैनिकों के शव-कोटि बिछाकर ॥७५॥

"ज्वालामुख सा गाण्डीव शराग्नि उगल कर।
लग गया दिशाओं को समस्त ही ढकने।
सब लगे भागने युद्ध भूमि तज सैनिक,
जीवन की आशा त्याग, दर्प खो, थकने ॥७६॥

यह दशा देख सेना की संमुख आकर
डट गए श्वेतवाहन के भीष्म पितामह।
ठन गया महारथियों में उन दोनों रण,
वासव-बलि सम रोमाञ्चक, तुमुल, भयावह ॥७७॥

कह उठे भीष्म को साधु! साधु! सब सैनिक,
है किया भीष्म ने दुष्कर अर्जुन से लड़।
है कौन भीष्म वा द्रोण, कृष्ण को वा तज
जो बह न वेग में जाय किरीटी के पड़! ॥७८॥

दस तीक्ष्ण शरों से विद्ध वक्ष में हो पर,
अर्जुन के संज्ञाहत हो गए पितामह।
संग्राम-भूमि से सावधान सारथि पटु
झट दूर ले गया निज रथ देख दशा यह ॥७९॥

तज समर पितामह को भी देख पलायित
आए दुर्योधन साथ विकर्ण, विविंशति।
लड़ क्षण भर, बिंध कर, रक्त वमन कर घूर्णित
सब ने अपनाई अवश पलायन-पद्धति ॥८०॥

यह देख जिष्णु ने ललकारा—"दुर्योधन !
क्यों पीठ दिखा, यश तज, कर रहे पलायन ?
क्यों नहीं गा रहे चारण करतब तेरे ?
छूटा विराट के गोधन-हित लालायन ? ॥८१॥

दुर्योधनता छिन गई आज शठ ! तेरो
है नाम मोघ ही तेरा जग जाने यह ।
रक्षक न तुम्हारा यहाँ दिख रहा कोई,
लो बचा भाग कर प्राण, दूर मुझसे रह" ॥८२॥

कुचले भुगंग सा यह सुन फिर दुर्योधन
लौटा, उसको राधेय देख फिर आया ।
लौटे दुःशासन, भीष्म विविंशति, गुरु, कृप,
मिल पुनः सबों ने व्यूह अभेद्य बनाया ॥८३॥

सब के अस्त्रों को काट विजय ने निर्भय,
गाण्डीव-घोष से सब का हरा मनोबल ।
संमोहन शर से हरी चेतना सब की
सब शंखनाद सुन हुए भीति-वश निश्चल ॥८४॥

तब देख सबों को पड़े शान्त, हत-चेतन
झट उत्तरीय उत्तर ने उतर उतारे ।
कृप और द्रोण के श्वेत, कर्ण के पीले
दुर्योधन, द्रोणतनय के नीले, सारे ॥८५॥

संज्ञा न देवव्रत ने थी अपनी खोई,
उनका न वसन कोई अत एवं उतारा।
बीभत्सु लाँघ रण-भूमि आ गए बाहर
कौरव-दल को रण-विमुख देख कर हारा ॥८६॥

इस भाँति देख जाते विजयी अर्जुन को
गंगासुत ने मारे कुछ तीखे सायक।
पर पार्थ विद्ध कर उन्हें और सारथि को
चमके ज्यों जलधर–निकर फाड़ दिननायक ॥

कौरव वीरों की हुई भग्न मूर्च्छा जब,
दुर्योधन ने हो दीन कहा पछता कर।
"कौन्तेय व्यूह से कैसे निकल गया इस,
संमोहनास्त्र से शव सा हमें सुलाकर ? ॥८८॥

सब अवहित हों, यह नहीं भागने पावे,
वध कर दें इस का अभी यहीं हम सब मिल"।
गंगासुत बोले—"कहाँ वीरता थी तब,
संज्ञा खो जब सब पा न रहे थे हम हिल ॥८६॥

हम भाग्यवान् हैं, है न नृशंस किरीटी
त्रैलोक्य-राज्य-हित भी न धर्म वह तजता।
वह अनायास अन्यथा मूर्च्छितों को सब
यमधाम पठा रहता निर्विघ्न गरजता ॥६०॥

अब भी चेतो, चुप लौट चलो हास्तिनपुर,
लौटा ले जाएँ अर्जुन गौओं को इन।
अभिमान दिखाने में अपना औरों को
जाए न तुम्हारा मूल राज्य ही निज छिन" ! ॥६१॥

यह सुन अमर्ष-धन मन मसोस दुर्योधन
हो गया म्लान-मुख, चुप, लम्बी साँसें भर।
लौटे प्रचण्डतर देख धनंजय को सब,
रक्षार्थ मध्य में दुर्योधन को रख कर ॥६२॥

बाह्लीक, भीष्म, गुरु, सोमदत्त, कृप, द्रोणज
सब का विभिन्न वाणों से कर अभिवादन।
दुर्योधन का मणिमुकुट काट लौटे जय,
कर देवदत्त, गाण्डीव उभय का नादन ॥६३॥

"वह अर्जुन ही था षण्ढ उत्तरा के जो
बन कर बृहन्नला साथ रहा हायन भर"
यह सुन विराट बोले—"तब तो दोनों का
उपयमन परस्पर ही होगा श्रेयस्कर" ॥६४॥

अर्जुन बोले—"शिष्या होए पुत्र-वधू
जिससे न किसी को शंका कुछ जाए रह।
आ जुटे निमन्त्रण, पा सब बन्धु, हुआ शुभ
अभिमन्यु-उत्तरा का सहर्ष परिणय-मह ॥६५॥

बलराम, कृष्ण, शिनि, द्रुपद, मत्स्य ने सोचा—
"भेजा समीप दुर्योधन के जाए चर।
माँगे वह आधा राज्य पाण्डुतनयों का
यह बता कि वे लौटे सब पण पूरा कर ॥९६॥

पर शठ दुर्योधन राज्य न लौटाएगा,
राज्यार्ध-हेतु लगता है होगा ही रण।
पाण्डव-दल के साहाय्य निमित्त नृपों को
भेजा क्यों जाये अभी न शीघ्र निमन्त्रण" ? ॥९७॥

द्वारका कृष्ण, बलराम शीघ्र ही लौटे,
बन दूत गए हास्तिनपुर द्रुपद-पुरोहित।
रण-हेतु नृपों के यहाँ विभिन्न निमन्त्रण
पंचाल, मत्स्य के दूत हुए ले प्रस्थित ॥९८॥

पाण्डवों, कौरवों के पक्षधर महीपति
आने प्रदेश, देशों से विविध लगे जब।
क्षिति काँप उठी, अनगिनत भटों की गति से
पथ, विपथ रथों से मथित लगे होने सब ॥९९॥

द्वारका सुभद्रानाथ स्वयं ही पहुँचे,
करने सहायता वासुदेव की रण में।
पर तीव्र हयों से दुर्योधन पहले ही
जा पहुँचा सीधे हरि के शयन-भवन में ॥१००॥

होकर प्रविष्ट कौन्तेय दूसरें ही क्षण,
कर-बद्ध खड़े पावों की ओर रहे नत।
दुर्योधन हो आसीन एक आसन पर
सिरहाने था जागरण-परीक्षा में रत ॥१०१॥

होते ही निद्रा भग्न देख दोनों को
पूछा यदुपति ने यथायोग्य स्वागत कर।
"आगमन हुआ किस हेतु आप दोनों का"?
दुर्योधन ही बोला पहले यह दृढ़तर—॥१०२॥

"रण में सहायता करें आप चल मेरी
हैं बन्धु आप के धार्तराष्ट्र, पाण्डव सम।
मैं अर्ह साह्य का न्याय्य पूर्वतर आया,
है सदाचार यह, आप प्रथित पुरुषोत्तम" ॥१०३॥

वसुदेव-सूनु बोले—"मैंने है पहले
देखा अर्जुन को खड़े सामने केवल!
पर आप पूर्वतर आए, दोनों का मैं,
अत एव करूँगा साह्य बाँट कर निज बल ॥१०४॥

नारायणाख्य भट एक ओर हैं अर्बुद,
दूसरी ओर मैं त्यक्त-शस्त्र एकाकी।
अर्जुन बोलें पहले, वे किसे वरेंगे
है मान्य प्रथमता अवरज की इच्छा की ॥१०५॥

गाण्डीवी बोले—"आप साथ दें मेरा',
दुर्योधन सुन यह पास गया हलधर के।
बोले बल—"निकलूँगा मैं तीर्थाटन-हित,
प्रतिकूल लड़ूँ किस भाँति कृष्ण यदुवर के" ॥१०६॥

हो गया यादवी सेना तब भी सारी,
कृतवर्मा के सेनाधिपत्य में पाकर;
दुर्योधन प्रमुदित; पक्ष कृष्ण अर्जुन का,
छोड़ा न अन्त तक सात्यकि ने अपना कर ॥१०७॥

चरणों में अर्जुन और कृष्ण के रह नित
वात्सल्य, प्रेम दोनों का अनुपम पाया,
सरहस्य भेद सब धनुर्वेद का अधिगत
कर बना इन्हीं का वह सहचारी छाया ॥१०८॥

कलहायित नारायणी स्वयं सेना थी,
हार्दिक्य महारथ थे, सात्यकि थे अतिरथ।
दोनों की अहमहमिका सदा टकराती,
दोनों क्रमशः हो गये परस्पर प्रतिरथ ॥१०९॥

थे रौहिणेय सोदर बलभद्र सुभद्रा,
भ्राता से ही अनुजा का विवाह था सुखकर।
प्रच्छन्न गदा-कौशल से अतः हली का,
बन गया भीम से दुर्योधन था प्रियतर ॥११०॥

सब खेल पार्थ ने आकर किन्तु बिगाड़ा,
स्वेच्छावश उससे हुई सुभद्रा अपहृत ।
पर कृष्ण सुभद्रा दोनों को लख संमति,
तज युद्ध किया सबने अर्जुन को सत्कृत ॥१११॥

बलराम बली ही अग्रज, कृष्ण अनुज थे,
संमान कृष्ण ही अधिक किन्तु नित पाते ।
विधि-सुरपति-कालिय-मद-हर; कंस-विजेता,
गिरिधर कुब्जा-प्रिय-कर तारक कहलाते ॥११२॥

बन गये रुक्मि-शिशुपाल-नरक कालयवन-
मगधेश-शाल्वजित् वे ही अच्युत यदुपति ।
पर ग्लानि-ग्रन्थि-स्वनिकर्ष-भावना-पीड़ित
बलराम सदा रहते थे मदिरा-हृत-मति ॥११३॥

सात्वत, अन्धक, मधु, भोज, वृष्णि कुकुरादिक,
बंट उच्च नीच वंशों के वश यादवगण ।
थे वन-विहार जल-केलि काल में जा जा,
करते तुलना छिप निज-कुल-शक्ति-परीक्षण ॥११४॥

दुर्योधन-हठ-वश ठने महाभारत से,
जब हुए नष्ट सब क्षत्रिय युवक सकौरव
सात्यकि-हार्दिक्य-कलह-वश तब मदिरा पी
लड़ मिटे रैवतक गिरि पर यदुकुल-गौरव ॥११५॥

पूछा माधव ने—"पार्थ ! चुना क्यों मुझको ?
मैं शस्त्र उठाऊँगा न, समझकर भी यह"
अर्जुन बोले—"मैं नष्ट आप सा ही कर
एकाकी अक्षौहिणी सकूँगा ग्यारह ॥११६॥

रहकर अशस्त्र भी आप वीर अर्बुद सम,
गाण्डीव अकेला जीत निखिल जग सकता।
पर्याप्त अतः मैं ही कौरव-सेना-हित,
थी मुझे कुशल सारथि की आवश्यकता" ॥११७॥

"उपपन्न आपकी मुझसे सात्त्विक स्पर्धा,"
सारथ्य किया स्वीकार कृष्ण ने कह यह।
दुर्योधन अक्षौहिणी एक सेना से
कृतकृत्य लिया चुन कृतवर्मा को साग्रह ॥११८॥

सत्कार विदुर धृतराष्ट्र भीष्म का पाकर
कौरव संसद् में बोले द्रुपद-पुरोहित—
"जो है मेरा कथनीय, हेतु जिस आया
वह रीति सनातन, राजधर्म, सबका हित ॥११९॥

धृतराष्ट्र, पाण्डु दो पौत्र हुए शन्तनु के,
धृतराष्ट्र ज्येष्ठ भी अन्ध न हो नृप पाये,
अवरज भी होकर पाण्डु लोक-संमति से
पैतृक सिंहासन पर थे गये बिठाये ॥१२०॥

जब पाण्डु गये आखेट हेतु कानन को,
धृतराष्ट्र बने तब केवल राजप्रभारी।
इसलिए पाण्डु के जेठे पुत्र युधिष्ठिर,
युवराज बने हास्तिनपुर के अधिकारी ॥१२१॥

दुर्योधन से आहुत द्यूत-रण में वे
हो विजित गये जिस पण से वन सहपरिजन।
हैं इन्द्रप्रस्थ का राज्य चाहते स्वार्जित,
वह पूरा कर लौटे वन से पञ्चानन ॥१२२॥

यद्यपि अधिकारी पूरो पित्र्य अवनि के,
फिर भी वे केवल माँग रहे हैं आधा।
हैं यहाँ समिति में सचिव अनेक उपस्थित,
क्या कहीं किसी को दिखती इसमें बाधा ? ॥१२३॥

प्राणान्त पाण्डवों का करने को बहुविध,
षड्यन्त्र किये कुछ बन्धुजनों ने गर्हित।
पर चिरजीवी रह गये सुरक्षित वे सब;
स्थापित स्वतन्त्र ही किया राज्य निज अर्हित ॥१२४॥

हर लिया राज्य वह गया द्यूत के छल से
कुछ लाद कठिन फिर दुरभिसन्धि से हो पण।
तेरह वर्षों तक वह पूरा कर लौटे,
निज राज्य क्षमा-रत माँग रहे पाण्डवगण ॥१२५॥

करना न चाहते बन्धु जनों से विग्रह,
जन धन की क्षति क्षिति के विचार वे सारी।
वे साथ कौरवों के रहने को उद्यत,
अपमान, क्लेश भी सहकर उनसे भारी ॥१२६॥

सेनाएँ अक्षौहिणी सात ही उनके
धृतराष्ट्र-सुतों के पास जुटी हैं ग्यारह।
पर एक पार्थ ही मार सबों को सकते।
अतिरिक्त बुद्धि-बल केशव का प्रलयावह" ॥१२७॥

सब सुन बोले गाङ्गेय—"भाग्य से सकुशल।
हैं पाण्डव विधिवश, उनके कृष्ण सहायक।
हैं धर्मराज संकोची युद्ध-विद्वेषी,
सहकर भी परिभव विपदाएँ कुरुनायक ॥१२८॥

बलवान् किरीटी पार्थ कृतास्त्र महारथ
हैं वेग कौन सकता उनका रण में सह?
असमर्थ इन्द्र भी, औरों का कहना क्या?
त्रिभुवन भी संमुख खड़ा नहीं सकता रह" ॥१२९॥

राधेय बीच में ही बोला सुनकर यह—
"क्यों एक बात थकते न आप दुहराते।
अज्ञातवास में ज्ञात, भग्न-पण पाण्डव,
पञ्चाल, मत्स्य के बल हैं हमें डराते? ॥१३०॥

देंगे आधा क्या, तुयं न भय से कुरुपति
रिपु को भी देंगे भूमि धर्मतः सारी
यदि पितामहागत राज्य चाहते पाण्डव,
आसमय यथापण पुनः बनें वनचारी ॥१३१॥

फिर लौट छाँह में कुरुपति की अकुतोभय,
नित रहें, मूर्खतावश न मोल लें विग्रह।
तज धर्म अन्यथा यदि उतरेंगे रण में
तो कुरु-वीरों की मार सहेंगे दुःसह" ॥१३ ॥

गंगासुत बोले—"डींग हाँकते क्यों तुम,
क्या एक पार्थ द्वारा षड्रथ जय भूले ?
तुम भी तो बहुशः स्वयं हो चुके निर्जित,
किस विक्रम पर रहते नित इतने फूले" ? ॥१३३॥

धृतराष्ट्र कर्ण को डाँट, भीष्म के प्रति झुक
बोले—'जनकल्याणैषी भीष्म पितामह।
इस में न कौरवों और पाण्डवों के हो,
सारी वसुधा के हित का होता संग्रह ॥१३४॥

भूदेव ! आप पञ्चाल कृपा कर लौटें,
जाएँगे सञ्जय तुरत दूत मेरे बन"।
यह कह सत्कृत कर ब्राह्मण को लौटाया,
संजय से तब बोले चिन्ताशङ्कित - मन ॥१३५॥

"है मिथ्यावृत्ति न पाण्डुसुतों में कोई,
मेरे चरणों पर रखा राज्य भी अर्जित।
वे नहीं त्यागते कभी धर्म मर्यादा,
हो द्वेष-राग-वश कर्म न करते वर्जित ॥१३६॥

भौतिक-सुखहित वे फंसे न किसी व्यसन में
संमान यथोचित सदा सबों का करते।
कुरुकुल के पाँचों सहज साम-प्रिय भूषण
वे कभी प्रजा को अपनी नहीं बिसरते ॥१३७॥

दुर्योधन दुर्मति कर्ण क्षुद्रतर उस से,
दो ही द्वेष्टा बन उनमें क्रोध जगाते।
ये नेहेनर्दी छेड़ पाण्डुतनयों को
मुख से मृगेन्द्र के ग्रास छीनने जाते ॥१३८॥

हर धर्म-राज का भाग कौन सकता है?
जिस के हैं अर्जुन भीम कृष्ण से अनुचर?
है पूर्व युद्ध के ही प्रदान उसका हित
रह कौन सकेगा सुखी अहित उनका कर? ॥१३९॥

सकते एकाकी जीत धरणि को सारी
गाण्डीवी बरसा कर निज खरशर निश्शंर
सामने ठहर सकता न मर्त्य कोई भी
वह एकाकी भी त्रिभुवन से बलवत्तर ॥१४०॥

कोई न भीम का गदाघात सह सकता
वह महारथी भी है अर्जुन से अनवर।
भुजबल में वह एकाकी नागायुत-सम
रण में न शक्र भी उसका कुछ सकते कर ॥१४१॥

माद्रेय, युधिष्ठिर, द्रुपद, विराट सबान्धव,
कैकेय पाँच भाई सब वीर प्रवर हैं।
सात्यकि, कल्मष, चेदीश, पाण्ड्य अनुगत हो,
हित-हेतु पाण्डवों के प्रतिपल तत्पर हैं ॥ १४२ ॥

अर्जुन महेन्द्र - सम, विष्णुतुल्य हैं केशव,
बैठेंगे दोनों कृष्ण एक ही रथ पर।
यह सोच काँप उठता हूँ मैं, दुर्योधन,
है स्वयं उलझ जाता विनाश के पथ पर ॥ १४३ ॥

ज्यों इन्द्र विष्णु मथते दानव-सेना को,
उस भाँति कौरवों को ये दो मथ देंगे।
दुर्योधन-निकृत युधिष्ठिर कुपित तपस्वी,
दे शाप धार्तराष्ट्रों को भस्म करेंगे ॥ १४४ ।

पाण्डवों द्रौपदीतनयों से भी पाँचों,
सब से पूछोगे मङ्गल, कुशल अनामय।
जो प्राप्तकाल हो सुनृत वह कह अवहित,
टालो जो संभुव दिखता कुरु-कुल के भय' ॥१४५॥

जा उपप्लव्य गावलगणि कर अभिवादन,
बोले—"धर्मात्मज ! विपदा-निशा गई ढल।
नृप पूछ रहे हैं कुन्तीसुत, माद्रीसुत,
द्रौपदी सात्मजा हैं न पूर्णतः सकुशल ?" ।। १४६ ।।

बोले अजातरिपु—"यहाँ आपका स्वागत;
है, मुदित हुआ कर प्राप्त आपका दर्शन।
संदेश आप के मुँह से सुन ताऊ का,
मैं सपरिवार कुशली, नन्दित हूँ विद्वन् ।। १४७ ।।

धृतराष्ट्र, भीष्म, वाह्लीक, द्रोण, कृप, गुरुसुत,
कुशली माँ बहनें ? अनुचर, परिजन, पुरजन ?
सकुशल, युयुत्सु, नृपसचिव, शकुनि, राधासुत,
कुरुपतिमानी दुर्योधन, सहदुःशासन ? ।। १४८ ।।

क्या कभी हमें धृतराष्ट्र, भीष्म, गुरु, कृप या,
गुरुसुत, दुर्योधन, कर्ण दोष कुछ देते ?
है राज्य हमारा पैतृक लौटाने का,
क्या कभी हमें ये नाम परस्पर लेते ? ।। १४९ ।।

गाण्डीवनुन्न स्तनयित्नु-घोष बाणों के,
क्या कभी स्मरण करते कौरव फाल्गुन के ?
दिव्यास्त्र-शौर्य-कौशल-घन, अतिरथ योद्धा,
हैं उन से बढ़कर जग में, समान वा उन के ? ।। १५० ।।

ज्यों सरकंडों को गज, त्यों रौंद कटक को
जो बढ़ते रण में क्या वे भीम स्मरण हैं।
सहदेव नकुल के क्या कलिंगजय, शिविजय
भूले त्रिगर्त-जय के भी उदाहरण हैं ? ।। १५१ ।।

जो हुआ पराजय गये घोष-यात्रा में
सुन कुमति कर्ण का मन्त्रित दुर्योधन का
क्या स्मरण कभी वह करता उसका, हमने
था उसे छुड़ाया जिस से, उस बन्धन का ? ।। १५२ ।।

आक्रमण मत्स्य पर कर्ण-मन्त्रणा से कर,
जिस विधि षड्रथ हो गये तिरस्कृत, निर्जित
लड़ एक पार्थ ने सब को धूल चटाई।
तब भी न कर्ण, दुर्योधन हैं क्या लज्जित ? ।। १५३ ।।

अपना बचपन से ही न बना पाये जब,
हो मृदु भी पाँचों हम मन कर्म वचन से।
तब धार्तराष्ट्र वह किसी त्याग से अब क्या,
अनुकूल हमारे होगा अन्तर्मन से ?" ।। १५४ ।।

संजय बोले "कुरुतिलक ! पाण्डवों की है,
कौरवगण सकुशल रह चर्चा करते नित।
देवेन्द्र-तुल्य हैं आप पाँच, मिल कुल की
विपदा टालें, अपमान, क्रोध कर विस्मृत ।। १५५ ।।

है निन्द्य एक भी कर्म साधु पुरुषों का
कालिख सा आनन का कलंक बन जाता।
पशुवृत्ति युद्ध है, नरक-जनक, जिसमें दल
प्रत्येक हानि जय-विजय-व्याज से पाता ॥ १५६ ॥

दिखती अजेय पाण्डव कौरव दोनों की
सेनाएं वीरों से भूषित विश्रुतबल।
संभव न एक का बिना विनष्ट हुए ही,
करना विनष्ट दल को द्वितीय ही केवल ॥ १५७ ॥

कर कुल-जन-धन-संहार प्राप्त राज्यश्री
है त्याज्य, मरण के तुल्य, गर्ह्य वह जीवन।
वे धन्य बान्धवों सुहृदों के सुख के हित,
जो त्याग विभव सब रहते सन्यासी बन ॥ १५८ ॥

यदि भाग न भी दें कौरव बिना समर के
तब भी न परस्पर श्रेयस्कर करना रण।
क्षणभङ्गुर जीवन, राज्य, समृद्धि, क्षणिकतर,
वरणीय भैक्ष्य से उदर-दरी का पूरण ॥ १५९ ॥

कुरु, सृञ्जय का कल्याण एक मन में रख,
मैं शरण कृष्ण, पार्षत, विराट की आया।
पाण्डव दे देंगे प्राण न क्रूर बनेंगे
विश्वास-लोक मानस में है यह छाया" ॥ १६० ॥

तब कहा युधिष्ठिर ने—"आहव की मैंने
कोई न आप से अब तक बात कही है।
सच है अयुद्ध है श्रेष्ठ युद्ध से सब विधि
प्रत्येक विपद् चुप मैंने अतः सही है॥ १६१॥

है श्रेय छेड़ना स्वयं न मानव का रण,
कर दिया जाय यदि प्राप्य किसी का चुकता।
जा रहे बढ़ावा दिये सुतों को अपने,
नृप सदा हमीं से माँग रहे भावुकता॥ १६२॥

हित सत्य वचन कर अवमत अनुज विदुर का,
हो स्वार्थ-मग्न कर दिया उन्हें निर्वासित।
हैं चाह रहे निष्कण्टक राज्य धरा का,
ले क्षय हमारा करते शम प्रत्याशित ?॥ १६३॥

हैं कर्ण गृहीतायुध अर्जुन को रण में,
कह पारणीय कर रहे आत्मवञ्चन हो।
कितने अतीत में हुए युद्ध कुरुओं के
पर वे न बने क्यों द्वीप, दिये भाषण हो॥ १६४॥

राधेय, पितामह, द्रोण, द्रौणि, दुर्योधन
कृप, शल्य सबों को ज्ञात न बात प्रथित यह ?
है धनुर्युद्ध में तुल्य कौन अर्जुन के ?
सह कौन भीम का गदाघात सकता रह ?॥ १६५॥

यदि अन्ध वृद्ध नृप और तनय भी उनके
यह बात ठीक बैठा लें अपने मन में।
पाण्डव कोपानल से न जले तब कोई,
आ विघ्न नहीं डाले उनके शासन में ॥१६६॥

सच सर्वविदित यह है कि राज्य का पूरे,
शन्तनु के मैं ही एक मात्र अधिकारी।
युवराज तभी तो चुना गया केवल मैं,
किसको न वास्तविकता यह ज्ञात हमारी ?।१६७॥

षड्यन्त्रों से घातक अनेक रह रक्षित,
पण कपट-द्यूतका भी लौटा कर पूरा।
सह कठिन कष्ट भी विपिन-वास मैं न ना,
मैं मांग रहा अपना भी दाय अधूरा ॥१६८॥

मेरा भी अर्जित इन्द्रप्रस्थ लौटा दे,
अधिकार शेष पर सकल रख दुर्योधन।
तब भी न करेंगे रण हम शान्त रहेंगे,
कर कलेश-जनित आक्रोश उग्र का रोधन ॥१६९॥

गावल्गणि ! जब तक विदुर मुख्य मन्त्री थे,
कुरुराज तभी तक धर्म, न्याय पर थे स्थिर।
दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन ने मिल,
जब दी कुमन्त्रणा, नृप की बुद्धि गई फिर ॥१७०॥

दुर्योधन को कहिये कि सहा नित तेरा
अन्याय कपट रह तुमसे भी बलवत्तर।
हो मूक सभा में पाञ्चाली का धर्षण,
हम बनें न कुरु-कुल नाश हेतु, इस से डर ॥१७१॥

पण पूरा कर निज राज्य-भाग अब लेंगे,
है शान्ति तभी केवल कुरुकुल में संभव।
दो पाँच ग्राम भी पांच भाइयों को यदि;
क्षम, उद्यत, मैं दोनों के हित; शम, आहव ॥१७२॥

योद्धा कितने भी अतुल और हों उसको,
है किन्तु पक्ष में मेरे धर्म प्रबलतम।
असपत्न राज्य दुर्योधन को न मिलेगा,
मन से निकाल दे अपने यह सपना, भ्रम" ॥१७३॥

संदेश दिया तब अर्जुन ने—"दुर्योधन
यदि राज्य युधिष्ठिर को न स्वयं लौटाता,
तो नाच रहा चढ़ काल शीर्ष पर उसके,
भर चुका पाप-घट, है अब कुपित विधाता ॥१७४॥

राजर्षि युधिष्ठिर क्रोध रुद्ध वर्षों का
तज क्षमा, धर्य बरसायेंगे कुरुओं पर।
कुरु-सेना होगी दृष्टिमात्र से तृणवत्
जब भस्म, करेंगे तब क्या नृप पछता कर? १७५॥

जले भीम-वेग ले भीम गदा रथ पर हो
आरूढ़ कोप-विष उगलेंगे निज खरतर।
होंगे विद्युत् से पक्व शस्य सम कौरव
लब दग्ध, सुमति तब क्या कर लेगी आकर ?॥१७६॥

रथ पर होंगे आरूढ़ एक जब दोनों,
नारायण, मैं गाण्डीव तूण ले अक्षय।
प्रलयानिल सा प्रज्वलित उठूँगा मैं हा,
पाएँगे तब क्या नृप कर के हा अनुशय ?॥१७७॥

सब महारथों का और कर्ण का भी मैं,
वध कर कौरव-साम्राज्य करूँगा करगत।
सुन नीति विदुर की क्या धृतराष्ट्र करेंगे,
हत होगा जब सानुज दुर्योधन उद्धत ?॥१७८॥

होंगे विनष्ट सब दिव्यास्त्रों से मेरे,
कौरव दल में जीवित न रहेगा कोई।
वे चाह रहे जय देवासुर-विजयी पर,
प्रत्यक्ष देख भी सब गति उनकी सोई॥१७९॥

शान्तनव, द्रोण आत्मज, नृप, विदुर कहेंगे,
जो वह मैं मानूँगा, चिरायु हों कौरव।
यह विश्वयुद्ध, जन-धन-संहार टलेगा,
संसार बने मत वृथा नरक यह रौरव॥१८०॥

कल्याण कौरवों का है केवल तब ही
अब करें युद्ध में नहीं उतरने का पण।
अन्यथा विषय-सुख, दान-पुण्य सब कर लें,
होंगे विनष्ट सब छेड़ पाण्डवों से रण" ॥१८१॥

संदेश पाण्डवों का सुन संजय से यह,
नृप आम्बिकेय से बोले सुरसरितासुत—
"ये अर्जुन कृष्ण स्वयं नर नारायण हैं,
हैं कर्म, वीरता, महिमा इनकी अद्भुत ॥१८२॥

पौलोम, कालखंजों, निवातकवचों को
जम्भासुर को जय ने एकाकी मारा।
था किया अग्नि को तृप्त जला खाण्डव को,
आया विरोध में वज्रपाणि भी हारा ॥१८३॥

जब चक्रपाणि केशव, गाण्डीवी अर्जुन
दो साथ रहेंगे तब क्या होगी दुर्गति।
रोएगा मल मल हाथ हठी दुर्योधन,
बिगड़े को अब भी लो सुधार तज दुर्मति ॥१८४॥

रामाभिशप्त, दुर्हृदय कर्ण सूतात्मज,
शकुनि सुबल-सुत खोटा, पापी दुःशासन।
दुर्योधन के ये सचिव ताप-त्रय ही हैं,
कौरव राज्य-श्री के लाञ्छन, विरत्रासन" ॥१८५॥

सुन कहा कर्ण ने—'दोष पितामह ! क्यों हैं,
देते मुझको, मैं क्षात्रधर्म में स्थित हूँ ।
मैं सभी पाण्डवों को मारूँगा रण में,
मैं कुरूपति-हित ही नित अवहित अर्पित हूँ"।।१८६।।

सुन बात कर्ण की कहा भीष्म ने—"कुरुपति !
यह षोडशांश के भी न पार्थ के है सम ।
जो अनय तनय करते आये हैं तेरे,
वे इसी कुमति के कर्म; मूर्त्त है यह तम ।।१८७।।

ले इसका हो आश्रय कुबुद्धि दुर्योधन,
अवमान पाण्डुपुत्रों का करता संतत ।
जो किये कर्म नारायण-सख ने पग पग,
उनके समक्ष उपलब्धि कर्ण की तृणवत् ।।१८८।।

मारा इसके भाई को संमुख जय ने,
कर क्या न विराट नगर में युद्ध भयावह ?
मूर्च्छित कर सब शूरों के वसन उतारे,
तब क्यों न बना यह कुरूओं का क्लेशापह ? ।।१८९।।

गन्धर्वों से निगृहीत घोषयात्रा में
बंध दुर्योधन ह्रियमाण हो रहा था जब ।
क्यों कहीं छिपा था कर्ण वीरमानी यह ?
था प्राणदान अर्जुन ने उसे दिया तब" । ।।१९०।।

अनुमोदन करते कहा द्रोण ने—"सच हो,
कोई न विश्व में अर्जुन-तुल्य धनुर्धर।
सकते न ठहर सुर असुर सामने उसके,
वह जो चाहेगा निःसंशय लेगा कर" ॥१६१॥

धृतराष्ट्र सभय बोले—"अतिरथ भी जग में,
हैं बड़े एक से एक अनेक महाबल।
रणत्याग, पराजय कभी न सुनी इसी को,
हैं नाम पड़े जय, विजय इसी के केवल" ॥१६२॥

संजय बोले—"माहात्म्य सव्यसाची का,
स्वयमेव समझ यों महाराज नीति-निपुण।
इस भाँति पुत्र के वश में पड़ हतमति हो,
क्यों पाण्डुसुतों की सही निकृति हो अकरुण ? ॥१६३॥

सुन कूट-द्यूत में जीत सुतों की पग पग,
उस क्षण न हर्ष से फूले आप समाते।
जब हार जुए में पाण्डव गये विपिन को,
थे मुदित आप, कौरव थे उन्हें चिढ़ाते ॥१६४॥

दी भूमि आपको जीत पाण्डवों ने ही;
पर सदा आपने माना उसे स्वयंजित।
दुर्योधन को अर्जुन ने गन्धर्वों से;
लड़ किया मुक्त, फिर भी न तनिक वह लज्जित ॥१६५॥

गाण्डीव, सुदर्शन चक्र अजेय धरा में,
हैं कालचक्र से प्रलय-हेतु दो उद्यत।
त्रिभुवन अजातरिपु के उस होगा वश में,
जिसके हैं अर्जुन, भीम, कृष्ण भी अनुगत ॥१९६॥

करते अनीश सा आप विलाप वृथा हो,
शासन दुर्योधन पर न कभी हैं करते।
हारे समझा मैत्रेय, व्यास, भीष्म, विदुर,
पर आप धर्म तज पुत्र-मोह में मरते" ॥१९७॥

दुर्योधन बोला—राज्य युधिष्ठिर तज निज,
है पाँच गाँव हो माँग रहे मुझ से अब।
धमकी की भाषा छोड़ दूत निज भेजा,
बलवत्तर मेरी सेना सुनी, दिखी जब ॥१९८॥

गुरु, भीष्म, द्रौणि, कृप, कर्ण एक भी इनमें,
वध, शमन पाण्डवों का अशेष सकते कर।
मिल कर्ण शल्य दुःशासन शकुनि तथा मैं
लड़ प्राण पाण्डवों के पाँचों सकते हर ॥१९९॥

मैं पाण्डुसुतों को भूमि कदापि न दूँगा।
जो हो, सूई के अग्रभाग से भी मित।
ये बलि-पशु होंगे निहत हमारे हाथों,
इस वैवस्वत-मख-हेतु कर्ण, मैं दीक्षित ॥२००॥

जो द्रोण, पितामह, अश्वत्थामा, कृप में,
वह बल मुझ में भी, मैं न किसी से निर्बल।
है स्फूर्ति, तेज, विद्या, दृढ़ता सब मुझ में,
होगा कदापि मेरा न मनोरथ निष्फल' ॥२०१॥

कह उठा कर्ण दुर्योधन से—"है मेरे,
ब्रह्मास्त्र पास, जो परशुराम से पाया।
पाञ्चाल मत्स्य शत्रु पाण्डवों को मैं
मारूँगा; अर्जुन से मैं वीर सवाया ॥२०२॥

सब रहें यहाँ कृप, द्रोण, भीष्म, द्रोणात्मज,
मैं ही मारूँगा सब को जा एकाकी।
यह भार ले लिया मैंने अपने सिर पर;
है बात न कोई देख रहा चिन्ता की" ॥२०३॥

गङ्गा-सुत बोले—"डींग हाँकते जाओ,
अपनी स्तुति अपने गाओ भुजा उठाकर।
पर नाच रहा अब काल सीस पर तेरे,
चेतोगे अर्जुन के समक्ष हो जा कर" ॥२०४॥

हो कुपित कर्ण ने कहा—"पितामह मेरी,
निन्दा अर्जुन की सदा प्रशंसा करते।
रण में न भाग लूँगा ये जब तक जीवित"
कह गया भवन नतमुख लम्बे डग भरते ॥२०५॥

धृतराष्ट्र गवल्गण-तनय, व्यास सबने मिल,
दुर्योधन को सब भाँति पुनः समझाया।
थी कुटिल हंसी हंस रही किन्तु कुरुओं पर,
दुर्नियति; उसे हितवचन न तनिक सुहाया ॥२०६॥

संजय जब लौटे हास्तिनपुर, माधव से,
धर्मात्मज बोले—"लिया आपने सब सुन।
हैं छिपे तात के लोभ, पाप अन्तर में,
वे संधि राज्य लौटाये बिना रहे बुन ॥२०७॥

तज धर्म, न्याय वे पुत्र-मोह में डूबे,
हो स्वार्थ-परायण बातें सुमधुर करते।
प्रच्छन्न मिलाते हाँ में हाँ सुत की ही,
आहें अलीक ही, भ्रातृ-तनय-हित भरते" ॥२०८॥

सुन कहा कृष्ण ने—"जाता हूँ हास्तिनपुर,
मैं स्वयं सन्धि-हित दूत आपका बन कर।
पर दुर्योधन अनुकूल कदापि न होगा,
उसके ही कारण युद्ध रहेगा ठन कर ॥२०९॥

जो पुरुषकार से शक्य अवश्य करूँगा,
पर नियति कदापि नहीं जा सकती टाली।
दुर्मति दुर्योधन स्वयं, कर्ण, दुःशासन,
सौबल ऊपर से तीन सहाय कुचाली" ॥२१०॥

द्रौपदी सिसकती बोली—"भैया केशव,
नारायण ! दोनों कथित तुल्य हैं पातक।
ज्यों वध अवध्य का, अवध वध्य का त्यों ही,
मानव समाज की स्वस्थ प्रगति के घातक ॥२११॥

मैं वेदिमध्यजा यज्ञसेन की तनया,
हूँ धृष्टद्युम्न की बहन, सखी तेरी मैं।
अजमीढ़ वंश की स्नुषा, पाण्डु भूपति की
महिषी महेन्द्रसम पञ्चपाण्डवों की मैं ॥२१२॥

मैं पाँच महारथ पुत्रों की हूँ माता,
अभिमन्यु-तुल्य जो भागिनेय हैं तेरे।
मैं केश पकड़ परिषद् तक गई घसीटी,
थे देख रहे पाँचों अचेष्ट पति मेरे ॥२१३॥

थे जीवित ही पांचाल, वृष्णि, सृञ्जय सब,
जब गई सभा में दासी मान चिढ़ाई।
विवसन करने को मुझ रजस्वला को खल,
जब हुए, "पाहि मां केशव" तब चिल्लाई ॥२१४॥

यदि सन्धि करेंगे भीम और अर्जुन भी,
तो युद्ध करेंगे भाई, वृद्ध पिता ही।
अभिमन्यु-सहित मेरे सुत पाँच महारथ,
भगिनीपूजक पञ्चाल युवक जनता ही ॥२१५॥

"बहन ! धैर्य रख—कृष्ण याज्ञसेनी से बोले—
"युद्ध रहेगा होकर रो मत आँखे धो ले।
जाता हूँ बन सन्धिदूत दायित्व-भान है,
किन्तु जानता हूँ जो भावी, विधि-विधान है ॥२१६॥

युद्ध अवश्यंभावी दिखता स्पष्ट मुझे है,
दुर्योधन हित पथ्य वचन सुनता न मानता।
पुत्र-परायण हुए अन्ध धृतराष्ट्र मोहवश,
भीष्म, द्रोण, वाह्लीक कुण्ठ सब की महानता ॥२१७॥

इस प्रकार जिन दुष्टों ने है तुम्हें रुलाया,
स्त्रियाँ करेंगी उनकी इससे भी बढ़ क्रन्दन।
दु:शासन, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, स-भीष्म-कृप,
सबका अर्जुन, भीम करेंगे दर्प-निकन्दन ॥२१८॥

—×—×—

सोपान ६

दूत कर्म में असफल हो नय-निपुण कृष्ण ने,
बुला कर्ण को निजरथ पर सन्निकट बिठाया।
हित ऋत अमृत वचन से विविध प्रसङ्ग चलाकर,
उसका जन्म-रहस्य उचित कर्त्तव्य बताया ।।१।।

"कुन्ती"[1]-सुत कानीन, अर्यमा के अंशज तुम,
यह रहस्य प्रच्छन्न अभी तक, पर अब जानो।
कर्ण ! पाण्डु-सुत क्षेत्रज तुम, राधेय नहीं हो,
अपने को कौन्तेय ज्येष्ठ पाण्डव ही मानो ।।२।।

हास्तिनपुर का राज्य तुम्हारा ही है पैतृक,
पाण्डव, कौरव, यादव, सृञ्जय सभी वशंगत।
कुरुपति-पद पर करूँ अभी अभिषेक तुम्हारा,
धर्मराज युवराज स्वयं हों तेरे पद-नत ।।३।।

ज्यों मैंने कुल-कलह यादवों का था टाला,
उग्रसेन को पुनः नृपासन पर बैठा कर।
त्यों तुमको ही घोषित कर हास्तिनपुर-पति मैं,
लौटूँ घर, कौरव-पाण्डव-चिर-कलह मिटा कर ।।४।।

1. उद्योग अध्याय १४०, १४१, १४२ १४३

फलेगा अन्यथा युधिष्ठिर दुर्योधन का,
पाण्डव कौरव पक्षयों का यह वैर-वह्नि-कण,
आहुति जिस में बन जाएंगे अखिल विश्व के,
अस्त्र शस्त्र, धन धान्य, कला कौशल, क्षत्त्रिय गण ।।५।।

निहत हो चुके कंस, नरक, पौण्ड्रक मुर, शम्बर
जरासन्ध, शिशुपाल, शाल्व, कालयवन मायी।
नहीं चाहता मैं क्रम में हो उसी परिगणित,
हलधर-प्रिय, गान्धारीसुत दुर्योधन भाई ।।६।।

साथ त्याग दो तुम यदि कह यह उस दुर्मति से,
कर पाऊंगा नहीं मित्र! अनुजों का ही वध।
कौरव-पाण्डव-युद्ध विकट यह टल जाएगा,
दुर्योधन-विष का है केवल यह मन्त्रौषध' ।।७।।

अवहित हो सब सुन कर बोला कर्ण कृष्ण से—
"मुझे देख आ गया स्तनों में राधा के पय।
दुःख झेल दम्पति ने मुझ को पाला पोसा,
उठा मूत्र मल, समझ मुझे औरस-सदृश तनय ।।८।।

पाणि-ग्रहण भी किया सूत-कन्या का मैंने,
वही प्रिया है, पुत्र-पौत्र उस से जनमाये।
कुन्ती-सुत कहला इनसे मेरा छिन जाना,
उचित नहीं, जगदीश्वरत्व भी यदि मिल जाए ।।९।।

दुर्योधन ने मुझे धूल से उठा, प्रेम से,
गले लगा, कह सखा बनाया अंगराज है।
भोगा तेरह वर्ष अकंटक राज्य साथ रह,
मुझे मानता अपना सूतों का समाज है ॥१०॥

किया पाण्डवों के विरुद्ध भी दुर्योधन ने,
रण-साहस हँस मेरी मैत्री के बल केवल।
चुना मुझे अर्जुन से द्वैरथ रण में प्रतिभट
भीष्म, द्रोण, कृप, द्रौणि, शल्य, सबको तज अतिबल ॥११॥

भय, वध, बन्धन, लोभ, ज्ञाति कोई निमित्त हो,
साथ सुयोधन का तज देना अब अकार्य है।
नहीं करूँ गोविन्द! पार्थ से द्वैरथ रण यदि,
तो अकीर्त्ति हम दोनों की जग में अवार्य है ॥१२॥

भेद युधिष्ठिर से न आप यह कभी बतावें,
राज्य अन्यथा वे दे देंगे मुझे जितेन्द्रिय।
और सुयोधन को ही सौंपूँगा मैं तो वह,
अतः धर्मसुत बने रहें पाण्डव सर्वप्रिय ॥१३॥

नेता जिनके स्वयं आप, योद्धा भीमार्जुन,
धर्मराज वे ही अवश्य हों राजा शाश्वत।
कुरु-दल का तजना होगी मेरी कृतघ्नता
परामर्श दें ऐसा यदुकुल-तिलक! मुझे मत ॥१४॥

शस्त्रयज्ञ[1] होने को ही है दुर्योधन का;
आप स्वयं अध्वर्यु और वेत्ता हैं जिसमें।
होता हैं बीभत्सु, स्रुवा गाण्डीव धनुर्वर,
उद्गाता अभिमन्यु, भीम प्रस्तोता इस में ।।१५।।

हैं युयुधान प्रतिस्थाता, ब्रह्मा अजातरिपु,
माद्रीपुत्र, घटोत्कच हैं शामित्र तीन जन।
दुःशासन - वध - रक्तपान है सुत्य भीमकृत,
हनन सव्यसाची से मेरा है पुनश्चयन ।।१६।।

पतन शिखंडी, धृष्टद्युम्न से भीष्म, द्रोण का,
दुर्योधन - वध भीमजन्य यज्ञावसान है।
गान्धारी के साथ पुत्र-पौत्र-वधू-क्रन्दन,
अश्रुपात ही इस मख का अवभृथ-नहान है ।।१७।।

केशव! क्यों सब जान आप मुझ को भरमाते,
इस सारी पृथिवी का ही है नाश उपस्थित।
दुर्योधन, मैं, शकुनि और दुःशासन ये ही,
विधि-विधान से स्पष्ट निमित्त-चतुष्टय कल्पित ।।१८।।

मैंने देखा स्वप्न, युधिष्ठिर अस्थिकूट पर,
बैठे कांचन - भाजन में हैं खीर खा रहे।
उन्नत पर्वतारूढ़ वृकोदर गदापाणि हैं,
गरज-गरज निज ग्रास मेदिनी को बना रहे ।।१९।।

१. उद्योग १४१ के २९ से ५१ तक

माद्री-सुत युयुधान तीन हैं नरवाहन पर,
साथ आपके श्वेत-कुंजरारूढ़ धनंजय।
मेरे साथ शलभसम लगता सारे प्रतिभट,
गाण्डीवानल में प्रविष्ट होंगे निःसंशय" ॥२०॥

कहा कृष्ण ने—"तुम्हें सुहाती बात न मेरी,
और सर्वदा समुचित दिखता, है जो अनुचित"।
"भेंट स्वर्ग में होगी अब", कह—चला दीन-मन,
कर्ण कृष्ण का आलिंगन कर, उतर, विसर्जित ॥२१॥

"मनोवृत्ति का बना वराक मनुज है पुतला,
पतला शासन-सूत्र मनीषा का है अतिशय।
आत्म-प्रलम्भन हेतु समर्थन कर देता मद,
जग को ठगता बता धर्म्य वह अपना निर्णय ॥२२॥

विधि लगती विपरीत कर्ण की और राष्ट्र की,
तभी विज्ञ भी कर्ण न मेरा कहा मानता।
पग-पग पर दिखती यह भवितव्यता प्रबल है,
हाय! सुमति पर भी छा जाती अमिट म्लानता ॥२३॥

जो महत्त्व रहने में अर्जुन के विरोध में,
प्राप्त कर्ण को, प्राप्य न साथ वही रहने पर।
शशी निशापति होता दिनपति से सुदूर रह,
समझ ठीक ही रहा कर्ण स्थितियों का अन्तर ॥२४॥

पद-संपद् - लिप्सा से लोकेषणा प्रबलतर;
दृढ़तर है संस्कार, प्रकृति का वश, आकर्षण।
कर्ण समझ भी सब खिचता हो जाता मृति को",
हँसे देख मायागति, मायापति मन ही मन ॥२५॥

कुन्ती कर्णार्जुन - द्वैरथ सुन गई एक दिन,
कर्ण भास्कराभिमुख ऊर्ध्वभुज था जब जप-रत।
बोली—"पुत्रक[1] पूर्व पाण्डु के परिणय से भी,
जना तुझे मैंने सविता से पा वर अभिमत ॥२६॥

मेरे सुत कानीन ज्येष्ठ क्षेत्रज पाण्डव तुम,
पक्ष धार्तराष्ट्रों का तज आओ निज दल में।
पार्थार्जित कौरव-हृत ले फिर लक्ष्मी भोगो,
हो कर्णार्जुन-मिलन, टलें खल-गण, रण, पल में ॥२७॥

कर्णार्जुन बलराम-कृष्णवत् विश्वविदित हों,
क्या असाध्य होगा यदि साथ मिलें भ्रातृ-द्वय ?
पाँच भाइयों से वृत विधि सम होओ शोभित
तुम राधानन्दन न, पृथानन्दन निःसंशय ॥२८॥

सुनी कर्ण ने तभी स्नेह-पूरित रवि-वाणी,
"पृथा-कथन है तथ्य, पथ्य है माँ का कहना।
भला इसी में है तेरा," अनसुना किन्तु कर,
वचन पिता-माता का, उसने दिया उलहना ॥२९॥

१—उद्योग०—अ०-१४५, १४६

"वचन नहीं श्रद्धेय क्षत्रिये ! आज तुम्हारा,
आभिजात्य मेरा सरिता में फेंक लिया हर।
हुआ सूत, क्षत्रिय न, जनम ले क्षत्रिय-कुल में,
शत्रु और सकता क्या इस से बढ़ अनिष्ट कर ?॥३०॥

यथाकाल पाला न स्वयं कर्त्तव्य प्रभू का,
आई अब संस्काररहित मुझको समझाने।
कभी न पहले हित मेरा माता बन सोचा,
आज स्वार्थ-वश आई निज मातृत्व जताने !॥३१॥

कृष्ण सहित अर्जुन से आज न कौन भीत है ?
सब समझेंगे गया पाण्डवों से मैं भी डर।
मुझे पाण्डवों का भ्राता न जगत् मानेगा,
क्षत्रिय मुझे कहेंगे अवसरवार रणकातर॥३२॥

धार्त्तराष्ट्र आ रहे मुझे देते सब वाञ्छित,
करते हैं संमान इन्द्र सा ही मेरा नित।
वैर पाण्डवों से ठाना मेरे ही बल पर,
भग्न-मनोरथ करूँ उन्हें अब तज उन का हित ?॥३३॥

मुझे मानते तरि वे दुस्तर समर-सिन्धु में,
भर्तृ-पिण्ड, उपकार, सख्य का ऋण न चुकाऊँ ?
नष्ट लोक परलोक उभय होते कृतघ्न के,
कर उनका विश्वासघात तेरे घर जाऊँ ?॥३४॥

नहीं, नहीं, हो चुका बहुत ही अब विलम्ब है,
अब न शक्य है बीत चुका जो उसे उलटना।
यथाशक्ति धृतराष्ट्र सुतों के लिए लड़ूँगा,
पाण्डुसुतों से; अयशस्कर पीछे अब हटना ॥३५॥

रिक्तहस्त हो पर न यहाँ से तुम जाओगी,
रण में वध मैं अर्जुन का ही एक करूँगा।
शेष पाण्डवों को मैं जीवन-दान दे रहा,
अवसर भी पा प्राण न उनके कभी हरूँगा ॥३६॥

यदि मेरा हो गया पूर्ण पण अर्जुन-वध का,
पुत्र पाँचवाँ तब तेरा मैं ही होऊँगा।
मरा हाथ से अर्जुन के यदि मैं ही तो तुम,
होगी प्रमुदित और वीरगति मैं पाऊँगा ॥३७॥

किसी भाँति माँ बनी रहोगी पाँच सुतों की,
वे पाँचो चाहे सकर्ण हों चाहे सार्जुन"।
कुन्ती बोली—"बेटा! कैसे तुम्हें दिखाऊँ?
मातृ-हृदय अपना, विधि ही मेरा है अकरुण ॥३८॥

अर्जुन, तुम दोनों ही हो मेरे दो लोचन,
तुल्य किसी का वध है मेरे लिए अरुन्तुद।
अतः यहाँ से मैं जाती हूँ भग्न-काम ही,
मेरे हित सौभ्रात्र छहों का था व्यथापनुद" ॥३९॥

साश्रुकम्प आश्लेष कर्ण का ले लौटी कह,
तुम स्वधर्म पालो, न करूँगी तेरा वारण।
भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर को रोकूँगी,
चार न वे भी होंगे तेरे वध के कारण ॥४०॥

बँधे धैर्य कुछ तो यदि इतना भी निभ जाए,
अभय चार का तुझ से, तेरा अभय चार से।
लगता अब टाले न किसी के युद्ध टलेगा,
कुपित दिख रहा है विधि ही अब सब प्रकार से" ॥४१॥

गान्धारी, धृतराष्ट्र, पितामह, विदुर, द्रोण ने,
मिल दुर्योधन को भी इधर बहुत समझाया।
"ज्येष्ठ अन्ध धृतराष्ट्र न थे अभिषिक्त कभी नृप,
भूप पाण्डु को ही कनीय भी गया बनाया ॥४२॥

यह कुरु-राज्य युधिष्ठिर का ही अतः दाय है,
किन्तु चाहते वे न पूर्ण, आधा ही लेना।
यदि तुम दे दो पाँच गाँव भी, तो शमेप्सु वे,
लौटेंगे रण तज, ले अपनी सारी सेना" ॥४३॥

सब की बातें सुन वह शठ आरक्त-नेत्र हो,
गया सभा से ही उठ सब की अवहेला कर।
धर्मराज भी सुन केशव से समाचार यह,
कुरुक्षेत्र में निज सेना आ गये सजा कर ॥४४॥

"कौरव-पाण्डव दोनों पक्षों में है योद्धा,
कौन-कौन से महारथी अतिरथी पितामह ?
जिज्ञासा यह सुन दुर्योधन की गङ्गासुत,
बोले--"कहता अभी, पूछते जब तुम साग्रह ॥४५॥

महारथी है पाण्डव दल में पाँचो पाण्डव,
महारथों के आठ भीम अतिबल समान हैं।
नागायुत-बल, तुल्य गदाधर और धनुर्धर,
अतिमानुष वे सचमुच तेजो-बल-निधान हैं ॥४६॥

गुडाकेश सा नहीं अतिरथी वीर दूसरा,
किसी पक्ष में, हृषीकेश उसके सहाय है।
डट सकते मैं द्रोण सामने[1] दो ही उसके,
किन्तु युवक वह, हम दोनों अब जरित-काय हैं ॥४७॥

द्रौपदेय, सौभद्र, महारथ श्रेणिमान् भी,
युधामन्यु, युयुधान, उत्तमोजा केकय-सुत।
द्रुपद, विराट्, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, सत्यजित,
शैब्य, काश्य, पुरुजित, शिशुपालज, चेकितान-युत ॥४८॥

हम में, द्रोणाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, मैं, कृप,
सौमदत्ति, वाह्लीक, विकर्ण तथा प्राग्ज्योतिष।
अतिरथ भी अर्धरथी ही गुरु-सुत जीवित-प्रिय,
और कर्ण रण-विमुख, प्रमादी, ईर्ष्यु, वचन-विष" ॥४९॥

१—उद्योग अ० १३८. १३९।

यह सुनते ही चला गया उठ कर्ण वहाँ से,
कह—"कदापि मैं गंगासुत के जीवित रहते।
भाग न लूँगा रण में, ये यश लेंगे मेरा,
मुझे द्वेषवश हीन रहेंगे ही नित कहते" ॥५०॥

तब होकर अभिषिक्त चमूपति, कहा भीष्म ने—
"स्पष्ट अभी कह देता तुम से एक बात मैं।
मेरे लिए समान पञ्च पाण्डव, शत कौरव,
अतः पाण्डवों का न करूँगा कभी घात मैं ॥५१॥

श्रेय बताता उन्हें रहूँगा यदि पूछेंगे,
किन्तु मरेंगे मेरे हाथों नित्य अयुत नर।
मुझ से बढ़ योद्धा बस अर्जुन एक विश्व में,
पर मैं इच्छामृत्यु, न है यह प्राप्त उन्हें वर" ॥५२॥

दुर्योधन ने भेजा अब आश्वस्त, कर्ण से
कर विचार संदेश युधिष्ठिर को उलूक से—
"धर्मराज बनते अजातरिपु थे, अब लड़कर,
चले नष्ट करने क्षिति को क्यों दन्दशूक से ?॥५३॥

क्षत्रिय बन आ लड़ो दम्भ, वैडाल त्याग व्रत,
आंसू पोंछो माँ के वर्षों से दुख सहती।
पांच गाँव भी तुम्हें दिये मैंने न, क्योंकि है,
मुझे भीम से लड़ने की चिरवाञ्छा महती ॥५४॥

द्रोण, भीष्म, कृप के मुझ से ही शिष्य सभी तुम,
सम-कुल, सम-बल हो लगता क्यों संगर से डर ?
बनो पुरुष अब भी तो, कितना तुम्हें सताया !
जड़ वा पशु-सम ही जाते अपमान सब बिसर ? ।५५।।

शरण ले रहे वासुदेव की ? साथ पार्थ के,
उतर पड़ो तब उनको भी आगे कर रण में।
पुरुष कहाता वही, वही जीवित कहलाता,
भर देता आतङ्क, शोक जो रिपु के मन में ।।५६।।

कृष्ण सभा में इन्द्रजाल बहुविध दिखा गये,
वैसी माया हम भी सकते दिखा और रच।
पूजा उनकी करें षण्ढ, मैं कंस-भृत्य से,
लज्जित हूँगा कर धारण रण-हेतु भी कवच ।।५७।।

बना भीति से मेरी जो बल्लव वह तूबर,
दुःशासन का रक्त पिये तो देखूँ पौरुष ?
धरती को चूमेगा मुझ से निहत गदा का,
आलिङ्गन कर, गर्व अलीक वृकोदर का उस ।।५८।।

पुत्र क्षत्रिया जनती इस दुर्दिन के ही हित,
शक्ति धनंजय भी निज रण में दिखा ले उतर।
स्मरण हरण का करे प्रिया की लज्जा के ही,
द्रोण, भीष्म, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण हैं इधर ।।५९।।

जो जो पण हैं किये, सभी आ पूर्ण करे अब,
डींग हाँकते कातर, करके शूर दिखाता।
मुझ से डर अर्जुन बृहन्नला क्लीब बना था,
देख प्रबलतर पृतना मेरी क्यों घबराता? ॥६०॥

छीन राज्य तेरा भोगा तेरह संवत्सर,
अब भोगूंगा मार तुम सबों को आजीवन।
सौ अर्जुन केशव सहस्र आ लड़लें मुझसे,
मुझ अमोघ-शर से डर भागेंगे विश्री बन" ॥६०॥

सुनते ही संदेश पाण्डवों ने पाँचों यह,
विषधर-सम फुफकार परस्पर क्रुद्ध निहारा।
माधव को देखा नयनों से वक्र भीम ने,
उगल रहे थे प्रतीकार की जो खर धारा ॥६२॥

स्वेद उभड़ आया ललाट से क्षुब्ध पार्थ के,
कृष्ण, पार्थ का अधिक्षेप सुन सभी उठे जल।
धृष्टद्युम्न, शिनितनय, शिखण्डी, केकय-पंचक,
धृष्टकेतु, अभिमन्यु, द्रौपदी के तनय सकल ॥६३॥

देख सबों के भाव और आकार वृकोदर,
उठ सवेग बोले क्रोधानल से ज्यों जलते।
फाड़ नेत्र, किटकिटा दाँत, लख शकुनि-तनय को
पीस हाथ से हाथ युद्ध के हेतु मचलते ॥६४॥

"मूर्ख ! मन्द ! तेरी सुन ली सब बातें मैं ने,
दुर्योधन है हमें मान कापुरुष चिढ़ाता।
कर्ण, शकुनि, दुःशासनादि के संमुख अब तुम,
कहना उससे भी उलूक ! जो तुम्हें बताता ॥६५॥

"रोक रखा नित हमें प्रेम ने धर्मराज के,
सहता तेरा अत्याचार गया इस कारण।
भीत कुल-क्षय से उनने ही हरि को भेजा,
दूत बना धीरज विपत्ति में भी कर धारण ॥६६॥

किन्तु काल-प्रेरित तुम, आखें खुलीं न अब भी,
घबराओ मत, कल से ही रण होगा निश्चय।
साथ भाइयों के सारे तेरा वध जिस में,
यथाशक्य होना है मेरे हाथों निर्दय ॥६७॥

भले उदधि लाँघें सीमा, पर्वत विशीर्ण हों,
हों सहाय तेरे कुबेर, त्रिपुरारि, वरुण, यम।
दुःशासन के भुज उखाड़ मैं रक्त पियूँगा,
हत होंगे आ रोकेंगे यदि भीष्म भी स्वयम् ॥६८॥

जाँघ तुम्हारी तोड़ूँगा वह गदाघात से,
द्रुपद-सुताको हँस जिसपर था चला बिठाने।
समरभूमि में टिको, छिपो या जल, वन, नभ में,
ढूँढ़ लगाऊँगा अवश्य ही तुम्हें ठिकाने" ॥६९॥

तब बोले सहदेव अमर्षित रक्तनयन हो,
"कहना अपने पाप बाप से धृष्ट लौट घर।
तुम हो जनमे कुरु-कुल, निज-कुल, लोक नाश हित,
यमपुर भेजूंगा मैं स-सुत तुम्हारा वध कर ॥७०॥

हास्तिनपुर का संबन्धी गन्धार न होता,
तो कदापि कुरुओं में होता यह न गृह-कलह।
रहे पाण्डवों के प्रति तुम नित क्रूर जन्मतः,
वैर चुकाऊँगा तुम से मैं ही रण में यह" ॥७१॥

कहा भीम से अर्जुन ने— "भैया विमूढ़ जो,
युद्ध आप से ठानेंगे, जीवित न रहेंगे।
मृत्यु-पाश-वश करें अभी रोमन्थ मूँद दृग,
पर उलूक तो दूत उसे क्यों कटुक कहेंगे ?॥७२॥

मैं प्रभाव से आर्य बन्धुओं और कृष्ण के,
कुछ न धरा के सकल क्षत्रियों को भी गिनता।
उचित दिया जायेगा उत्तर रण में कल से
गृह-गर्जन से तो कुछ मिलता और न छिनता ॥७३॥

पर उलूक ! कहना दुर्योधन से निज बल से,
जो करता आह्वान शत्रु का वही पुरुष है।
औरों के बल गरज शत्रु को आँख दिखाता,
क्षत्र-बन्धु, कापुरुष, शूक वह यव का, तुष है ॥७४॥

आगे रखकर वृद्ध पितामह को इस रण में,
मृत्यु-हेतु निर्लज्ज! हमें तुम हो धमकाते?
नहीं पितामह को कदापि मारेंगे पाण्डव,
सदय, सोच यह भीरु! नीच! फूले न समाते? ॥७५॥

और भीष्म ने कहा कि सृंजय शाल्व सैन्य का,
मैं संहार करूंगा मुझ पर रहा भार यह?
बिना द्रोण के भी कर सकता मैं क्षिति का क्षय,
पाण्डुसुतों से भी सकते तुम भय बिसार रह? ॥७६॥

निर्वृत हो तुमने माना कुरु-राज्य हस्तगत,
इतने ही से और पाण्डवों को आपद्-गत?
बने गर्व से अन्ध? तो सुनो सब से पहले,
उन्हें गिरा दूंगा कर शर-जर्जर, क्षत-विक्षत ॥७७॥

भीष्म पितामह को ही देखेंगे पहले सब,
मेरे बाणों से अचेत हो, रथ से पातित।
चाहे उनको रक्षा में आ जुटें सभी भट,
वैर उन्हों की पहली बलि से हो निर्यातित ॥७८॥

आत्म-विकत्थन, अहंकार, क्रूरता, तीक्षणता,
अनृत, कपट, मात्सर्य, धर्म-लङ्घन, कटुभाषण।
वृद्धातिक्रम, द्वेष दम्भ, अविनय, कुसंग का,
पाओगे अब द्रुत फल कल ही से कुल-नाशन! ॥७९॥

कुपित कृष्ण के, मेरे होने पर भी कैसे,
गई राज्य की, जीवन की तेरी न दुराशा ?
द्रोण, भीष्म, बाह्लीक, कर्ण होंगे अब हत सब,
तभी मिटेगी क्या शठ! तेरी युद्ध-पिपासा ?॥८०॥

अनुज सभी हो जायेंगे जब निहत भीम से,
मरण सुनोगे तनयों का भी जब इस रण में ?
गदाघात से लुठित भीम के मृतवत् पड़ हो,
कर पाओगे स्मरण अघों का निज क्या मन में" ?॥८१॥

धैर्य युधिष्ठिर ने भी तज तब कहा अन्त में,
चाट होठ, ले उष्ण श्वास अतिलोहितलोचन ।
"जा उलूक! कहना बर्ताव कुटिल नित तुमने,
किया पाण्डवों से है कुल-कलंक! दुर्योधन ॥८२॥

आत्मवीर्य से रिपु से जो संग्राम ठानता,
रह अभीत वह सच्चा क्षत्रिय शौर्यवान् है।
तू गुरुजन को आगे कर लड़ने है आता,
मान रहा पर-बल से अपने को महान् है॥८३॥

तू अपने से ही मुझ को भी रहा तोलता,
पाँच गाँव ही मांगे थे तुम से न मूढ़! डर।
मैं पिपीलिका को भी कष्ट नहीं देता तो,
बनूँ ज्ञातिवध का क्यों कारण यही सोचकर ॥८४॥

तुम्हीं हमें धमकी नित देते रहे युद्ध - हित,
वृद्धों बालों को परन्तु रण में न उतारो।
मुझे विडाल-व्रती दम्भी कहने से पहले,
अनृत और सूनृत का अन्तर स्वयं विचारो ।।८५।।

ईर्ष्या-भय-तृष्णा-मदान्ध तुम क्या समझोगे,
मैं वा केशव नहीं चाहते अहित तुम्हारा।
पर प्रयास सब व्यर्थ हुए मेरे अयुद्ध के,
खलता ही जीती, ऋजुता को समझो हारा ।।८६।।

कहा कृष्ण ने —"शकुनि-तनय! संदेश सुनाना,
मेरा भी दुर्योधन से, कल से होगा रण।
यह न समझना सारथि ही हूँ, मैं न लड़ूँगा,
भस्म विश्व को कर सकता ज्यों दीप्त हुताशन ।।८७।।

किन्तु जहाँ भी जाओगे भूतल, जल, नभ में
वहीं दिखेगा तुम्हें पार्थ-रथ पीछा करता।
तुम्हें न गिनता पांच पाण्डवों में से कोई,
विष्वक्सेनाश्रित न सैन्य से तेरे डरता" ।।८८।।

लौटा प्रतिसंदेश पाण्डवों का उलूक ले,
कटी सन्धि की अन्तिम आशा, गया युद्ध ठन।
और डटे भट पहन कवच दोनों पक्षों के,
विविध अस्त्र ले, गए व्यूह भी दोनों के बन ।।८९।।

निरख पितामह, गुरु को सम्मित मृधार्थ पार्थ में
अन्तिम क्षण में गया मोह, ममता, विरक्ति भर।
नष्ट युयुत्सा हुई, कृष्ण ने 'गीता' समझा,
पुनः उन्हें तब किया कठिनता से रण-तत्पर ।।६०।।

उतर युधिष्ठिर ने रथ से जा भीष्म, द्रोण, कृप,
और शल्य से अनुमति, आशीर्वाद ले लिया।
स्मरण सभी देवों का कर, धर ध्यान धर्म का,
शंख बजा निज युद्ध-हेतु आदेश दे दिया ।।६१।।

तुमुल लोम-हर्षण रण में लग गये शीघ्र भट,
लगे सैकड़ों के प्रतिपल भुज, पद, सिर कटने।
लगी दिशाएँ फटने भेरी-शस्त्र-नाद से,
रुण्ड, मुण्ड, त्वक्, वसा, रुधिर से धरती पटने ।।६२।।

निज योधों को देख व्याकुलित भीष्म-शरों से,
कहा कृष्ण ने—"पार्थ न टूटा मोह तुम्हारा।
देख शिथिल पड़ जाते अभिमुख द्रोण, भीष्म को,
शपथ भूलता, क्षात्र धर्म गल जाता सारा" ।।६३।।

पर न तजी मृदुता अर्जुन ने, तब निज पण तज,
दौड़े भीष्म-वधार्थ कुपित ले कृष्ण सुदर्शन।
हँसे भीष्म, तोड़ा पण मैंने आज कृष्ण का,
किन्तु पार्थ ने दौड़ कृष्ण को पकड़ा तत्क्षण ।।६४।।

कहा "सखे ! अब तजो क्रोध, अनुजों तनुजों का,
शपथ खा रहा हूँ मैं, अब छोड़ी कोमलता"।
टङ्कारा गाण्डीव यही कह लगे छूटने,
उस से उल्वण बाण दिखा कौरव-दल जलता ॥९५॥

भीष्म, शल्य, दुर्योधन, भूरिश्रवा, द्रोण, कृप,
बाह्लिक, दुर्मर्षण, श्रुतायु, अम्बष्ठराज, शल।
चित्रसेन सबको अर्जुन ने ऐन्द्र अस्त्र से,
विद्ध, पराजित किया; हुए सब व्याकुल विह्वल ॥९६॥

पाण्डव वीरो का करते संहार अयुत नित,
आठ दिनों तक रहे भीष्म लड़ते भीषण रण।
कहा नवें दिन अर्जुन को तब वासुदेव ने
"करो भीष्म से प्रखर समर कर स्मरण आत्म-पण ॥९७॥

मार रहे प्रतिदिवस भीष्म मध्याह्न-सूर्य बन,
चुन चुन कर पाण्डवदलीय शूरों को उत्तम।
तुम करते ऋजु युद्ध जा रहे अनुत्साह से,
अब कब प्रगट करोगे लोकातीत पराक्रम"? ॥९८॥

बोले नतमुख अर्जुन—"वध कर मैं अवध्य का,
बनूँ नरकगामी लौटूँ क्यों नहीं, पुनः वन ?
मार पितामह को न राज्य या स्वर्ग-चाहता,
होए मेरी विजय, पराजय, अयश वा मरण ॥९९॥

जिनके कन्धों पर चढ़ खेला, कूदा, घूमा,
धनुष पकड़ना भी सीखा है जिन के कर से ।
फूल चढ़ाने के है, जिनके योग्य चरण, सिर.
उन्हे गिराऊँ कैसे जर्जर कर खर शर मे ?" ॥१००॥

यह सुन दौड़े कृष्ण भीष्म की ओर कुपित अति,
बाहु युद्ध-हित पुनः हाथ में लिये कशा भर ।
तब पीछे से दौड़ पार्थ ने पकड़ कृष्ण को,
कहा—"अयश लें मेरे हित पण को न मृषा कर ॥१०१॥

रहा पितामह के वध का अब भार मुझी पर,
शपथ शस्त्र की, सुकृत, सत्य को मैं खाता अब" ।
यह सुन माधव लौट रक्तमुख आये रथ पर
देख अस्त रवि को समाप्त रण किया गया तब ॥१०२॥

धर्मराज संध्या में बोले, हो विषण्ण-मुख,
"अब न मुझे गोविन्द ! सुहाता यह पाशव रण ।
भीष्म चमू का मेरी क्षय करते नित जाते,
रौद्र, याम्य वे रूप युद्ध में करते धारण ॥१०३॥

वज्रपाणि देवेन्द्र, पाशधर वरुण, क्रुद्ध यम;
जीते जा सकते हैं, किन्तु न कभी पितामह ।
स्वयं कूद मैं पड़ा शलभ सा भीष्मानल में,
हेतु हो रहा मेरे ही संहार विकट यह" ॥१०४॥

"धर्म्य सान्त्वना दी अजातरिपु को यदुपति ने —
"अब विषाद करना न मध्य में नीति शुभंकर।
अर्जुन भीम स्वयं पावक पवमान तुल्य हैं,
दें निदेश यदि करूँ भीष्म से मैं भी संगर ॥१०५॥

मैं ही मारूँगा कर के आह्वान भीष्म का,
नहीं चाहते पार्थ भीष्म का वध यदि करना।
समझ रहे यदि शक्य भीष्म के ही वध से जय,
मेरे हाथों लिखा आज तब उनका मरना ॥१०६॥

भीष्म हनन-पण अर्जुन का जो है जन-संमुख,
उसे करूँगा मैं पूरा होगा न वितथ यह।
सखा सनातन, अनुजापति, पैतृष्वसेय वे,
जो अमित्र उनका, न मित्र मेरा सकता रह ॥१०७॥

वचन कभी होने असत्य दूँगा न सखा का,
इस से मेरा स्वयं टूट जाये चाहे प्रण।
काट मांस भी दे सकता निज तन का उनको,
वे भी ऐसा ही कर सकते मेरे कारण ॥१०८॥

किन्तु करेंगे स्वयं कार्य यह जिष्णु इन्द्र सुत,
है अशक्य कोई न कार्य जग में उनके हित।
बात भीष्म की क्या केवल वे असुर सुरों को
एक साथ एकाकी कर सकते भू-शायित ॥१०९॥

द्रोण, भीष्म, कृप बने आततायी के अनुचर,
और आततायी हैं नृप के लिए वध्य जन।
गुरु वा ब्राह्मण, बाल, वृद्ध नित हिंसारत जो,
उसका वध है राजधर्म, जनता का पालन" ॥११०॥

स्वयं भीष्म ने कहा युधिष्ठिर से दसवें दिन,
"लक्ष भटों के वध से मैं निर्विण्ण हो चुका।
करे यत्न वध का मेरे संमुख आ अर्जुन,
मान रहेगा कब तक अब संकोच वह रुका" ॥१११॥

बोले अर्जुन—"करें शिखण्डी हनन भीष्म का,
लगने दूँगा इन्हें किसी का मैं न एक शर।
निहत शिखण्डी से होंगे इस भाँति पितामह,
पृष्ठगुप्त मुझ से ये उनके बनें प्राण-हर" ॥११२॥

"षण्ढ भीष्म का दिष्ट षण्ढ मुझ से ही है वध"
सोच शिखण्डी ने छोड़े तब अमित निशित शर।
चले शिखण्डी पर शस्त्रास्त्र महारथियों के
दिये हस्तलाघव से सब जय ने निष्फल कर ॥११३॥

फिर तो सारी पाण्डव-सेना घेर भीष्म को,
लगी शिखण्डी को कर आगे लड़ने निर्भय।
और कौरवी सेना पूरी सब यत्नों से,
लगी बचाने एक भीष्म को ही कर निर्णय ॥११४॥

ज्यों बुझने से पूर्व दीप थे भीष्म दीप्ततम,
और शिखण्डी अर्जुन-रक्षित हुआ प्रखरतर।
प्राण मोह तज लगे भीष्म के वध-रक्षा-हित,
दोनों पक्ष अभूतपूर्व अति-विकट-समर-पर ॥११५॥

भीष्म मृत्यु के वरण-निमित्त लगे प्रविष्ट हो,
पाण्डव-सेना में विनाश-लीला जब करने।
यदुपति-प्रेरित अर्जुन भी तीखे विशिखों से,
लगे पितामह को मूर्छित कर अभय विचरने ॥११६॥

छिन्न-कवच भी महारथों से भीष्म अडिग रह,
लगे शरों से पाण्डव-दल में प्रलय मचाने।
चाप काटने लगे किरीटी तब उनके सब,
द्रुपद विराट, शिखण्डी उन पर इषु बरसाने ॥११७॥

ज्यों लेते नव धनुष भीष्म, जय काट गिराते,
कुपित भीष्म ने एक चला दी शक्ति विजय पर।
काट गिराया उसे सव्यसाची ने तत्क्षण,
और शिखण्डी ने छोड़े शित विशिख भीष्म पर ॥११८॥

दिखे न कम्पित तनिक भीष्म जब उन बाणों से,
तब गाण्डीवी ने पचीस शर स्वयं चलाये।
कहा भीष्म ने दुःशासन से "गाण्डीवी के
तीक्ष्ण बाण ये तन में मेरे अभी समाये ॥११९॥

ये न इन्द्र से हारे खाण्डव-दाह-युद्ध में,
दिया पिनाकी को वराह-रण में इन ने मथ।
मुसल, परिघ, पवि, गदा, सर्प यमदूत-तुल्य ये,
दिखा रहे क्षण क्षण मर्मन्तुद मुझे मृत्युपथ ॥१२०॥

जिष्णु कपिध्वज के वाणों से भिन्न न कोई,
और वाण ऐसी मुझको दे सकते पीड़ा"।
शक्ति उन्होंने कह यह एक चला दी जय पर,
काट गिराया जिसे पार्थ ने, समझा क्रीड़ा ॥१२१॥

लगे उतरने भीष्म-खड्ग ले तब रथ पर से,
किन्तु श्वेतवाहन ने काटे खड्ग ढाल भी।
लगे वरसने दसो दिशाओं से शर, तोमर,
प्रास, भल्ल, असि, वत्सदन्त पट्टिश विशाल भी ॥१२२॥

कौरव दल सारा रक्षा में सतत भीष्म के
लगा रहा, पर किया पार्थ ने सबका वारण।
टूट पड़ा पाण्डव दल पूरा क्रुद्ध भीष्म पर
लुढ़क पड़े वे, बने विद्ध शर ही विच्छादन ॥१२३॥

लगे देख सोमक, सृञ्जय, पञ्चाल योध यह,
सिंहनाद कर शंख स-दुन्दुभि तूर्य बजाने।
गरुड़ध्वज थे मुदित निपातित देख भीष्म को,
भीम लगे भीषण दहाड़ने मुक्का ताने ॥१२४॥

पर ज्यों शर-शय्याश्रित भीष्म हुए त्यों आ झट,
पहुँचे पाण्डव कौरव वर्म उतार त्याग रण।
अस्तंगत-रवि-तुल्य भीष्म को देख सभी थे,
मित्र शत्रु हतबुद्धि, मूक, परिताप-नत-वदन ॥१२५॥

कहा देवव्रत ने—"मैं इच्छामृत्यु मरूँगा,
तभी, उत्तरायण जब हो जायेंगे दिनकर।
लटक रहा सिर मेरा, एक शि.ोधि मुझे ो",
सुन दुर्योधन शिरोधान लाया मृदु सुन्दर ॥११६॥

"शर-शय्योचित ये न", शान्तनव बोले हँसकर,
"वीर-अर्ह उपबर्ह मुझे दें" कुन्ती - नन्दन।
सुनते ही शर तीन मार धरती में नीचे
दिया भीष्म के सिर को फाल्गुन ने अवलम्बन ॥१२७॥

चारों ओर निहार भीष्म फिर बोले—"पानी"
सुन लाये दुर्योधनादि सुरभित शीतल जल।
गङ्गासुत बोले—"न पियूँगा भूतल-जल अब;
छिपे कहाँ अर्जुन, वे ही इस हेतु भी कुशल" ॥१२८॥

विनत-वदन मध्यम पाण्डव आ बोले "यह हूँ,
क्या है मेरे लिए और आदेश पितामह ?"।
कहा भीष्म ने—"शर तेरे बिंध तन जला रहे,
सूख रहा है मुंह, न पिपासा अब पाता सह ॥१२९॥

तुम्हीं वेदना-हर अब तर्पण-सलिल मुझे दो"
"अभी दे रहा" कह अर्जुन ने धनुष चढ़ाया।
दिया धरा को, बेध एक पर्जन्य बाण से,
फोड़ भूमि को स्वच्छ-धार पय बह कर आया ।।१३०।।

लगा भीष्म के मुंह में गिरने ऊपर तक उठ,
हुए तृप्त गत-पीड भीष्म शीतल पी वह जल।
देख पार्थ का अतिमानुष विक्रम अपूर्व यह,
स्तम्भित नृप-दल हुआ भीति-कम्पित कौरव दल ।।१३१।।

सब के संमुख भीष्म प्रशंसा अर्जुन की कर,
बोले—"तेरे लिए न अचरज यह कुरुनन्दन।
कह देवर्षि चुके हैं नर-नारायण तुम हरि,
क्षत्र-बन्धुओं के तुम दोनों मूर्त्त हो निधन ।।१३२।।

तुम्हीं धनुर्धर इस जगती में सर्व-श्रेष्ठ हो,
ज्यों जीवों में मनुज, खगों में गरुड़ विहगवर।
सरिताओं में सागर, धेनु चतुष्पादों में,
शैलों में हिमभूधर, नक्षत्रों में दिनकर ।।१३३।।

धार्त्तराष्ट्र ने सुना न मेरा द्रोण, विदुर, कृप,
परशुराम, यदुवर या संजय किसी का कथन।
श्रद्धाहीन, कुबुद्धि, अन्त में भीमसेन के,
हाथों पायेगा फल, वध अवलेप का मथन" ।।१३४।।

किन्तु शीघ्र ही दुर्योधन को देख म्लानमुख,
खड़ा पास बोले, गाङ्गेय वचन सुमधुर, हित।
"अब भी मेरी बात तात! मानों चेतो कुछ
स्वयं देख भी पार्थ-कर्म तुम हुए न विस्मित ? ॥१३५॥

वैष्णव, वारुण, ब्राह्म, ऐन्द्र, आग्नेय, पाशुपत,
पारमेष्ठ्य, वायव्य, सौम्य, सावित्र आदि शर।
दो ही को है विदित दिव्य ये अस्त्र मही में,
कृष्ण और अर्जुन, जो सुविदित नारायण नर ॥१३६॥

देखे तुमने कर्म अमानुष दिव्य पार्थ के,
अभी स्वयं, लो सन्धि शीघ्र कर, ये अजेय हैं।
जब तक पार्थ न भून भटों को तेरे डालें,
स्मरण रखो, ये यदुनायक के सखा प्रेय हैं ॥१३७॥

कुपित न जब तक इनके यदुपति सखा हो रहे,
करता जब तक चक्र सुदर्शन नष्ट न नृपदल।
कर न डालता जब तक कौरव दल को पूरे,
दग्ध अरे! राजर्षि युधिष्ठिर का कोपानल ॥१३८॥

हो समाप्त कुल-कलह साथ ही मेरे यह भी,
होए सुभ्रातृता पाण्डवों से अब तेरी।
मिले शक्ति के अर्जुन की पर्याप्त निदर्शन,
शेष रहें जीवित यह अन्तिम इच्छा मेरी ॥१३९॥

अब भी आधा राज्य पाण्डवों को दे दो तुम,
इन्द्रप्रस्थ ले, तुम से सानुज रहें युधिष्ठिर।
तेरा भी निर्विघ्न निभेगा क्षेम योग नित,
हो जाएगी शान्ति विश्व में भी स्थापित चिर ।।१४०।।

मद, मत्सर तज यदि मानोगे बात न मेरी,
पाप, अयश, कुलनाश सभी के होगे भाजन।
रोओगे सर्वस्व प्राण भी गँवा अन्त में",
मौन भीष्म ने किया पिहित-दृग कह यह धारण ।।१४१।।

पर मुमूर्षु को औषध-तुल्य नहीं यह भाया,
अतः नृपों के संग गया दुर्योधन उठ घर।
तभी कर्ण बोला—"आया राधेय भीष्म मैं,
दिया कष्ट है बहुत आप को आँखों में गड़" ।। १४२।।

आँखें खोल निहार भीष्म ने कहा स्नेह से,
हटा रक्षियों को गद्‌गद हो, कर आलिङ्गन।
'तुम न तनय अधिरथ-राधा के, रवि से जनमे,
कुन्ती-सुत हो अतः ज्येष्ठ पाण्डव कुरु-मण्डन ।।१४३।।

द्वेष न मेरा तुझ से कोई वत्स! सत्य यह,
तुझे मार्ग पर लाने को था भर्त्सन करता।
धर्म-लोप से जनमे, पाया नीच सङ्ग भी,
अतः पाण्डवों के प्रति तुम में है मत्सरता ।।१४४।।

तेरी ब्राह्मण-भक्ति, शूरता कृष्ण पार्थ-सम,
दान-वीरता प्रथित किन्तु राजस विचार सब।
अब भी आ यदि मिलो पाण्डवों से सगर्भ्य निज,
तो हित तेरा, कुल का, जग का है प्रकार सब" ॥१४५॥

कहा कर्ण ने—'मुझे विदित है जन्म-वृत्त निज,
पर कुन्ती ने तजा मुझे, राधा ने पाला।
भोगे सब ऐश्वर्य प्राप्त कर दुर्योधन से,
तज उस का अब पक्ष करूँ अपना मुँह काला ?॥१४६।

वासुदेव जिस भाँति सहायक हैं अर्जुन के
उसी भाँति मैं भी सहाय हूँ दुर्योधन का।
तन, मन, धन, परिजन, यश मेरा उसे समर्पित
लौट न अब परिहास सहूँगा मैं जन जन का ॥१४७॥

पाण्डव केशव रहें अजेय लिये औरों के,
मैं जीतूँगा इन्हें कह रहा है मेरा मन।
कर के द्वैरथ द्वन्द्व रहूँगा मैं अर्जुन से,
क्षमा करें चापल मेरा दें निज आशंसन" ॥१४८।

कहा भीष्म ने—"सहज कवच-कुण्डल-द्वय पा, तब
तुम भीषण थे, उभय-हीन अब तो सुजेय हो।
कहना मानो अब मद तज अपने को तौलो,
नर नारायण वे अमेय हैं, तुम सुमेय हो ॥१४९॥

थका सब को वहुत समझा सदा अब मैं यथाशक्ति ।
कभी कोई न मेरी कौरवों ने बात मानी ।
लड़ो तुम पार्थ के हाथों निहत हो स्वर्ग जाओ,
कुपित हैं क्षत्रियों से स्पष्ट दिखता अब भवानी' ॥१५॥

सोपान ७

परशुराम-जयी रथोत्तम भीष्म को भी,
देख अर्जुन के शरों से विद्ध, निपतित।
कौरवों की डूबती तरि को बचाने,
कर्ण अग्रज - सदृश दौड़ा त्वरित अवहित ॥१॥

कहा "यदि निधि धैर्य, विक्रम, शौर्य सब के,
भीष्म भी मारे गये, तो निहत हैं सब।
कठिन लगता है बताना देख, हम में,
कौन देखेगा उदय कल सूर्य का अब ॥२॥

दस दिवस लड़, आज कैसे गिरे कुरुवर,
सकल कुरुदल के वहाँ रहते उपस्थित?
अब मनाओ शोक सब खो भीष्म को निज,
प्राण, परिजन, धन, प्रजा, नृप, सैन्य के हित!

अस्तु; मैं ही भार लेता भीष्म का अब,
क्यों करूँ भय जब चराचर है विनश्वर?
पाण्डवों को मार पाऊँगा विरल यश,
या गिरूँगा उन्हीं के हाथों स्वयं मर ॥४॥

धृति, तपोबल, सत्य, सन्मति-निधि युधिष्ठिर,
भीम हैं प्रख्यात नागायुत पराक्रम।
त्रिदश-मौलि-तनय स्वयं अर्जुन युवक हैं,
अजय अमरों के लिए भी ये सुदुर्गम ॥५॥

यम नकुल सहदेव यम-सम; कृष्ण, सात्यकि,
एक से हैं एक ये दुर्धर्ष अतिरथ।
व्यूह में इन के प्रविष्ट निकल सकेगा,
कौन जीवित नर इन्हें निज-शौर्य से मथ ?॥६॥

वज्रधर को देख डर जाते असुर ज्यों;
पार्थ को त्यों देख कौरव दल डरेगा।
रथ कपि-ध्वज का निरख आ सामने डट,
कौन भट प्रतिरोध उनका झट करेगा ?॥७॥

दिव्य जिस के कर्म, विजय अमानुषों पर,
रुद्र से भी कर समर जिसने लिया वर!
जामदग्न्य-जयी स्वयं जिससे हुए जित,
जीत सकता कौन उसको है अपर नर ? ॥८॥

सह न सकता मित्र-कष्ट कदापि पर मैं,
रुदित दार कुमार, नृप की बुद्धि प्रतिहत!
पाण्डवों को मार नृप को राज्य दूँगा,
या बनूँगा भीष्म का रण-निहत अनुगत ॥९॥

किन्तु सेनापति हमारे द्रोण हों अब,
हम सबों के एक गुरु, शास्त्रज्ञ अनुपम।
स्कन्द-सम ये कुरु-चमू के अग्रणी हों,
पाण्डवों पर विजय पाने में विरल क्षम" ॥१०॥

हो गए प्रस्ताव पर इस एकमत सब,
द्रोण सेनानी बने, सब हुए हर्षित।
दिखे यद्यपि विविध अशकुन, उल्लसित पर,
द्रोण निज विक्रम लगे करने प्रदर्शित ॥११॥

द्रोण ने धृतराष्ट्र-सुत से कहा—"माँगो,
एक सैनापत्य में मेरे स्पृहित वर"।
"पकड़ जीवित ही युधिष्ठिर को मुझे दें"
मुदित पूछा द्रोण ने यह माँग सुन कर ॥१२॥

"क्या न काम्य अजातरिपु का वध तुम्हें भी ?"
कहा गान्धारेय ने—"वह है निरर्थक।
हमें मथते ही रहेंगे सब यथावत्,
पार्थ, सात्यकि, भीम, हरि उनके समर्थक ॥१३॥

किन्तु यदि जीवित लिए जायें पकड़ वे,
द्यूत खेलूँ तो पुनः आह्वान मैं कर।
और मुझ से पूर्ववत् ही हो विजित नित,
बैठ आजीवन रहें वन में विपिनचर" ॥१४॥

द्रोण बोले—"यदि न संमुख पार्थ के हों,
तो युधिष्ठिर को पकड़, दूँ सामने कर।
जेय सेन्द्र सुरासुरों से भी न अर्जुन,
समर से उनको हटा लो बस निमिष भर" ॥१५॥

जान, सुन यह, पार्थ से बोले युधिष्ठिर—
"ग्लह-हृदय बृहदश्व से पा अब अभय हूँ।"
"हो गृहीत परन्तु पड़ना शत्रु के वश,
ग्लानिकर है तात ! इससे मैं सभय हूँ—॥१६॥

पार्थ बोले—"लगा दूँगा प्राण अपने,
पर नहीं भैया करूँगा गुरु-हनन मैं।
आप का भी किन्तु गुरु के भी न हाथों,
भय तजें, होने कभी दूंगा ग्रहण मैं॥१७॥

टूक टूक भले धरित्री हो प्रलय से,
गिरें झड़ तारे, पड़े फट तारकापथ।
हों सहायक जिष्णु, विष्णु-सहित सभी सुर,
पूर्ण होगा पर न गुरु का यह मनोरथ" ॥१८॥

किया कितना भी पराक्रम द्रोण ने पर,
धर्म-सुत को किसी भाँति पकड़ न पाये।
गरुड-व्यूह बना बहा दी रक्त-सरिता,
भट बहुत दोनों दलों के काम आये॥१९॥

दिवस आया अशुभ तेरहवाँ समर का,
दूर थे संशप्तकों से पार्थ लड़ते।
इधर चक्रव्यूह गुरु ने रचा प्रकुपित,
पार्थ जिसका एक भेदन निपुण करते।।२०।।

व्यूह का था जानता अभिमन्यु भेदन,
पर अभी सीखा न था बाहर निकलना।
भीम बोले—"साथ तेरे घुस सभी हम,
शत्रु को प्रारम्भ कर देंगे मसलना"।।२१।।

पथ बना पैठा सुभद्रा-तनय भीतर,
द्वार रुद्ध किया जयद्रथ ने झटिति पर।
लड़ युधिष्ठिर, भीम, सात्यकि आदि हारे,
एक भी उनमें प्रवेश नहीं सका कर।।२२।।

उधर पड़ता सामने अभिमन्यु के जो,
वह विजित हो भागता, या मृत्यु वरता।
बढ़ गया आगे इसी विधि केन्द्र में पर,
पहुँच रिपुओं से गया घिर वीर लड़ता।।२३।।

युद्ध से भीषण हुए उसके पराजित,
शल्य, दुर्योधन, सहानुज कर्ण, सौबल।
देख कर्णावरज, अश्मकतनय को हत,
सामने कुरुदल सकल था भीति-विह्वल।।२४।।

जब बृहद्‌बल, रुक्मरथ, सत्यश्रवा के
साथ क्राथतनय हुए हत और लक्ष्मण।
कर्ण, सौबल ने कहा तब द्रोण से जा—
"छह महारथ साथ हो इससे करें रण" ॥२५॥

कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, कृप, द्रोण सात्मज,
एक बालक को हुए स्थिर घेर षड्‌रथ।
धनुष, खड्‌ग सचर्म, सारथि, पार्ष्णि, हय सब
नष्ट उसके कर निरस्त्र उसे किया श्लथ ॥२६॥

लड़ थका चिरकाल वह छह रथितमों से,
तब ठना दुःशासनात्मज से गदा-रण।
गिर पड़े दोनों गँवा संज्ञा गदा-हत,
उठा दुःशासन-तनय पर पूर्व कुछ क्षण ॥२७॥

लड़ अनेक महारथों से प्रचुर एकल,
श्रान्त था सौभद्र ज्यों ही उठ रहा पर।
मार सिर पर अदय दुःशासन-तनय ने,
अनवहित को गदा प्राण-रहित दिया कर ॥२८॥

लौट संशप्तक - समर से पुत्रवध सुन,
पार्थ ने हो व्यथित कुपित किया कठिन प्रण।
"यदि जयद्रथ का न संध्या तक करूँ वध
तो चिता मे होम दूँ निज देह तत्क्षण" ॥२९॥

व्यूह चौदहवें दिवस गुरु ने बनाये,
पद्म में सूची, शकट में पद्म दुस्तर।
और सूची में छिपाया सिन्धुपति को,
पहुँच ही पाना जहाँ था कार्य दुष्कर॥३०॥

सिन्धुपति के वध तथा रक्षा उभय हित
विकट पाण्डव कौरवों में ठन गया रण।
विजित जिसमें भीम से द्वैरथ समर में,
अंगपति ने चार बार[१] किया पलायन॥३१॥

पाँचवीं भी बार में पहले हुई जय,
भीम की ही, कर्ण की भी पर अनन्तर।
कर्ण-निर्जित जो धनुष, असि, शक्ति, हय, रथ
भीम थे निःशस्त्र भी रण में विगत-डर॥३२॥

कर्ण जब खोता धनुष, असि, शक्ति, संज्ञा,
मिल नवीन सहायता जाती उसे द्रुत।
भीम एकाकी यहाँ थे, अतः कोई
हो न पाता था उन्हें साहाय्य प्रस्तुत॥३३॥

भीम ने तब वज्र-मुष्टि-प्रहार से ही
तुरत चाहा कर्ण का प्राणान्त करना,
किन्तु अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण कर,
पड़ा रह भी शक्त उनको धैर्य धरना॥३४॥

द्रोण—१२६-३३; १३१-४४; १३४-२३; १३६-१७

इसी विधि राधेय भी उस क्षण किसी भी,
शस्त्र से कर भीम का सकता हनन था।
किन्तु कुन्ती को दिया सुरनिम्नगा के,
कूल पर बस रोकता उसको वचन था ॥३५॥

व्यथित वाणी-बाण से करना न चूका,
भीम को अधिरथतनय ने अतिकुटिल पर।
"तूबरक! अब मुझ सरीखों से न लड़ना,
प्राण-रक्षा भाग जय के पास ले कर" ॥३६॥

कटु वचन सुन कर्ण की धनुषी पकड़ झट,
तोड़, बोले भीम हँस सबको सुनाते—
"अभी मुझ से हो विजित असकृत् पलायित,
हाँकने में डींग शठ न तनिक लजाते? ॥३७॥

मल्ल युद्ध अभी न कर ले नीच मुझ से,
कर रहा आह्वान तेरा सब रहे सुन।
तुझे भी कीचक सदृश यमपुर पठा दूँ,"
हट गया परिणाम इसका कर्ण भी गुन ॥३८॥

भीम से निःशस्त्र था कत्थन-परायण
कर्ण ज्यों, त्यों वहाँ फाल्गुन पहुँच आए।
कर्ण के तन में समाये विशिख तीखे,
छूट कर गाण्डीव के गुण से चलाये ॥३९॥

छिन्नधन्वा भीम से; अर्जुन-शराहत
कर्ण दूर गया कुपित फुफकारता हट।
चढ़ गए युयुधान-रथ पर भीम जब तब
कर्ण पर नाराच छोड़ा पार्थ ने झट ॥४०॥

काट गुरु-सुत ने उसे नभ में गिराया,
पार्थ ने चौंसठ उसे तब बाण मारे।
भीत हो दोनों घुसे जा कटक-दल में
तब लगे मथने कटक को पार्थ सारे ॥४१॥

बढ़ गए अर्जुन जयद्रथ की दिशा में
कर रहे प्रतिरोध यद्यपि सात थे भट।
कर्ण, दुर्योधन, जयद्रथ, शल्य, गुरुसुत,
कृप तथा वृषसेन का था संघ उत्कट ॥४२॥

कर्ण से सोत्साह दुर्योधन पड़ा कह—
"हो न सैन्धव पार्थ से सूर्यास्त तक हत।
यदि करो यह यत्न तब हत हो धनंजय,
और हम भोगें अकण्टक राज्य सतत ॥४३॥

पार्थ को कर दें वितथ-पण सात हम मिल,
सिन्धुपति जीवित रहें रवि की प्रभा तक।
भाग्य से ही यह हमारे है प्रतिज्ञा
पार्थ ने विपरीत-विधि की आत्म-घातक" ॥४४॥

कर्ण वोला—'भीम धन्वी वीर अनुपम,
आज है उसके शरों से देह विक्षत।
सोच कर मैं क्षात्र धर्म खड़ा किसी विधि,
अंग सारे श्रान्त, लड़ने को न उद्यत ॥४५॥

पर करूँगा आप के हित आज भीषण,
पार्थ से रण विजय यद्यपि नियति-निर्भर"।
रौंद दायें और बायें शत्रु-दल को
पार्थ आ पहुँचे तभी दिखते कुपिततर ॥४६॥

भीम सात्यकि को बना पार्ष्णिरक्ष जय ने
कर दिया आक्रमण सैन्धव पर भयंकर।
कर्ण को पा सामने कर नष्ट-हय-रथ,
किया किंकर्त्तव्य-मूढ़ बरस प्रखर शर ॥४७॥

देख यह अपने बिठा रथ पर उसे भी,
गुरुतनय लड़ते रहे बीभत्सु से डट।
शल्य, कृप, वृषसेन, सैन्धव जूझ कर सब,
पार्थ का करने लगे प्रतिरोध उत्कट ॥४८॥

किन्तु खाकर मार फाल्गुन के शरों की
भाग सब योध सैन्धव को लगे तज।
साथ दो भी भट न होते थे पलायित,
दिखे उग्र अभूतभावी जब कपिध्वज ॥४९॥

कृष्ण-माया से दिखे रवि अस्त सहसा,
ज्यों लगे सब देखने उद्ग्रीव ऊपर।
रक्ष्यमाण महारथों से भी प्रथित छह
सिन्धुपति का जिष्णु-शर ने सिर लिया हर ॥५०॥

देख यह कृप द्रौणि दोनों ने अमर्षित
कर किरीटी पर दिया आक्रमण भीषण।
प्राण दोनों के बचाते पार्थ ने भी
आत्म-रक्षा-हित-चलाये तीक्ष्ण प्रहरण ॥५१॥

विद्ध, मूर्च्छित देख कृप को टला सारथि,
श्वेतरथ को त्याग भागा गुरुतनय भी।
देख पीड़ित निज शरों से सकृप कृप को
हो गए अनुतप्त अर्जुन पा विजय भी ॥५२॥

कर्ण ने धावा किया यह देख अवसर,
देख, उसकी ओर सात्यकि भी पड़ा चल।
पार्थ बोले—"रथ जनार्दन! उधर हांको,
वध न सात्यकि का कहीं कर कर्ण दे खल" ॥५३॥

कहा हरि ने 'महाभुज पर्याप्त सात्यकि
एक भी है कर्ण के हित पाण्डुनन्दन!
उत्तमोजा, युधामन्यु सहाय उसके,
हैं सुरक्षित सतत जिनसे पार्श्व, स्यन्दन" ॥५४॥

कर्ण सात्यकि भिड़ गए दोनों परस्पर,
विरथ सात्यकि ने किया राधेय को द्रुत।
एक उससे सब परास्त हुए हृदिकसुत,
शल्य, दुःशासन-सहित, वृषसेन, गुरुसुत ॥५५॥

विरथ बोले भीम अर्जुन के निकट जा,
कर्ण के वाग्वाण से अति-मात्र पीड़ित।
"कर्ण ने कह मुझे कायर, मूढ, पेटू
तूबरक, अकृतास्त्र, बालक किया व्रीडित ॥५६॥

वध्य मेरा भी अतः वह हो गया अब,
पर तुम्हारा कर्ण-वध-पण पूर्वतर है।
सत्य है करना इसे, तुम या करूँ मैं,
आज से यह शत्रु मेरा प्रबलतर है" ॥५७॥

कर्ण के जा पास बोले सव्यसाची—
"आत्मशंसी सूतसुत सुन कर्ण! पापी।
जय पराजय ध्रुव न होती इन्द्र की भी,
नीचता तेरी गई पर आज मापी ॥५८॥

आज अभिमुख कृष्ण के, मेरे, सबों के
भीम से तुम बार-बार हुए पराजित।
एक बार हुआ न मुँह से किन्तु उनके,
कटु पराभव-वचन तेरे हेतु प्रकटित।५९॥

विरथ, विकलेन्द्रिय, मुमूर्षु तुम्हें निरख भी,
भीम ने बस प्राण-दान तुम्हें दिया हैं।
"हनन का इसके किया है पण अनुज ने"
रोष अपना उग्र इस कारण पिया है।।६०।।

किन्तु केवल एक बार उन्हें कथंचित्,
विरथ विधिवश कर किया जो परुष जल्पन।
यह अनार्याचरण पाप महान; करते
जीत भी अरि को न शूर कभी कुकल्पन।।६१।।

पुत्र का मेरे अशस्त्र परोक्ष में वध
किया भीलुककार्य तुम ने सात मिल कर।
सामने तेरे तनय वृषसेन का मैं
सिर करूँगा छिन्न सब के बीच पिल कर"।।६२।।

सुन जयद्रथ-वध युधिष्ठिर मुदित बोले—
भीम, सात्यकि, कृष्ण-द्वय, मेरी बधाई।
आज हारा कर्ण बहुशः भीम से भी,
दक्षिणा युयुधान ने गुरु की चुकाई।।६३।।

किन्तु दुर्योधन हुआ अतिखिन्न, बोला—
द्रोण से—"मारा गया कैसे जयद्रथ?
आप अर्जुन से कभी लड़ते न मन से,
आप के रहते उसे कैसे मिला पथ?।।६४।।

द्रोण बोले—"छेदते क्यों वाक्-शरों से
कह चुका सौ बार पार्थ अजेय रण में।
पार्थ से रक्षित शिखण्डी भी गया हो
सफल अनुपम भीष्म के भी तो हनन में! ॥६५॥

कर्ण - दुःशासन - शकुनि - हृत - बुद्धि तुमने
विदुर की संमति न मान किया अनय है।
भीष्म के मेरे तथा अभिमुख किए जो
दुरित उनका मिल रहा फल इस समय है। ६६॥

कर्ण, कृप, तुम, शल्य, मेरे सुत सभी थे,
क्यों न सबने मिल जयद्रथ को बचाया?
क्यों मुझे ही जा रहे सब दोष देते,
पार्थ को है कौन अब तक जीत पाया?" ॥६७॥

बात दुहराई स्वयं यह कर्ण ने भी—
"सत्य है आचार्य का कुरुराज! कहना।
पार्थ दिव्यायुध, अभेद्य-कवच, रथोत्तम,
दिव्य गाण्डिव, कठिन सच उससे निबहना" ॥६८॥

कुपित दुर्योधन धुसा पर अरिचमू में,
और जित, मूर्च्छित युधिष्ठिर से हुआ लड़।
द्रोण रक्षा में गए जब दौड़ उसको,
तब छिड़ा दोनों दलों में कठिन संगर ॥६९॥

द्रोण के संमुख युधिष्ठिर ने कुपित हो,
शत्रुदल में रूप यम का किया धारण।
द्रोण के भी दिव्य अस्त्रों का किया सब,
दिव्य ही, रह अभय, अस्त्रों से निवारण ॥७०॥

कर्ण बोला—"मार सारे पाण्डवों को
मैं बनाऊँगा, तुम्हें कुरुराज ! राजा"।
सुन न मौन रहा गया कृप से कथन यह,
कहा—'सपना देखता क्या अरे जा जा ॥७१॥

डींग कितना भी सुयोधन के निकट तू,
हाँक. तेरा मिल चुका है पूर्ण परिचय।
पाण्डवों से जब हुई मुठभेड़ तेरी,
क्या कभी देखी सुनी तेरी गई जय? ॥७२॥

चित्ररथ से जब सुयोधन हृत हुए थे,
सब डटे सैनिक रहे हो रण-परायण।
एक तूने ही प्रथम सब से अकेले,
भीत हो संग्राम छोड़ किया पलायन ॥७३॥

क्या विराट नगर गया तू भूल सच ही?
धूल एकल पार्थ ने सब को चटाई।
सभी कौरव, तू सहानुज, भीष्म, गुरु, मैं
गुरुतनय थी साथ सब ने हार खाई ॥७४॥

पार्थ जब तक दूर हैं तब तक गरज ले,
शौर्य तेरा पास होता पहुँच शोषित।
तू मनोरथ-शूर है शर-शूर अर्जुन
द्वन्द्व में जिस से पिनाकी थे प्रतोषित ।।७५।।

कृष्ण का हा कौन जग में जीत सकता?
धर्मसुत जग दग्ध सकते चक्षु से कर।
भीम एकाकी हरा सकते सबों को,
यथाशक्ति परन्तु लड़ नृप-हेतु जी भर" ।।७६।।

सुन परुष कृप का कथन यह कर्ण बोला—
"काट लूँगा जीभ ही यदि कुछ कहा अब"।
देख मातुल को तिरस्कृत उठा स्वस्त्रिय
खड्ग ले बोला रहा न गया अधिक जब ।।७७।।

"यदि गुणों को वास्तविक मामा बताते
पार्थ के, तो द्वेष से तू कुटिल जलता।
सामने मारा जयद्रथ को न तेरे?
पार्थ ने तब थी कहाँ तेरी प्रबलता? ।७८।।

श्वेतरथ लोकैकवीर महारथोत्तम
हैं अजेय सुरासुरों से भी स-वासव।
ठहर, तेरा कर रहा धड़ से अलग सिर,
मृत्यु है तेरे लिए उपयुक्त पाशव" ।।७९।।

कर्ण बोला—"अरे रे! दुर्मति, द्विजाधम,
शूर कब से तू समरश्लाघी गया बन?
बाँह मत कुरुराज! मेरी आप पकड़ें,
देख ले मेरा पराक्रम यह इसी क्षण"। ८०॥

द्रौणि, कृप ने कहा—"दुर्मति, सूतपुत्रक,
क्षमा करते हैं तुम्हें हम आज उद्धत!
दूर कर देगा किरीटी शीघ्र तेरा
दर्प यह उद्रिक्त, भ्रम, घबरा अधिक मत"॥८१।

"शान्त कृप! गुरुतनय!"—दुर्योधन मनाते
हुए बोला—'अशुभ वचन-कलह परस्पर।
कर्ण, कृप, गुरु, तुम, सुबलसुत, शल्य, सब पर
कौरवों का कार्य गुरुतर सकल निर्भर॥८२॥

टूट तब तक आ पड़े पंचाल, पांडव
कर्ण पर, उसको सुनाते कुपित तर्जन—
"मूल सारे ही अनर्थो का यही खल"
कर्ण ने भी सुन किया निर्भीक गर्जन। ८३॥

भिड़ गया राधेय एकाकी सबों से,
मार खा उसकी लगे सब भागने भट।
जब वहाँ बीभत्सु आये स्वयं लड़ने
द्रौणि, कृप, हार्दिक्य, शल्य पहुँच गए झट।८४॥

छिड़ गया द्वैरथ किरोटी कर्ण में द्रुत,
बाण दोनों के बरसने लगे रण में।
पार्थ ने हँस एक शर ऐसा चलाया,
कर्ण का जिससे गिरा इष्वास क्षण में ।।८५।।

फिर उठा वह चाप कर्ण रहा समर-रत,
काट ही तब उसे फाल्गुन ने गिराया।
मार भल्लों से हयों को और चारों,
सुत को भी शीघ्र ही यमपुर पठाया ।।८६।।

पार्थ बाण-व्यथित उतर रथ से तुरत निज,
कर्ण जीवन-हेतु कृप के चढ़ा रथ पर।
अंगपति की भी दशा यह देख भागे,
कौरवों के भीत सैनिक समर तज कर ।।८७।।

तब चला रण-हेतु दुर्योधन विजय से,
देखते ही द्रौणि से कृप ने कहा यह—
"सिंह से गज के सदृश कौरव्य का है
पार्थ से रण जीवितान्तक, अतिभयावह" ।।८८।।

द्रौणि बोले—"आप रण न करें सुयोधन,
पार्थ से, मैं जा रहा उस से समर-हित"।
क्रुद्ध दुर्योधन व्यथित बोला—"न विक्रम
आप या आचार्य करते पूर्ण प्रकटित ।।८९।।

आप दोनों पाण्डवों का जोहते मुँह,
वन्धु मृत होते हमारे नित्य जाते।
आप दोनों प्रथित धन्वी त्रिपुररिपु सम,
और हैं पंचाल आँख हमें दिखाते॥९०॥

द्रौणि बोले—"सत्य ही मुझ को, पिता को,
पाण्डुसुत है प्रिय, उन्हें हम, पर न रणमें।
वे न जीवित जेय हैं आतमार्थ - योधी,
हैं लगे सामर्ष कौरव-भट-हनन में॥९१॥

स्वयं गर्वी, छली, लोभी, आप कपटी
कर रहे विपरीततः संदेह हम पर।
स्वयं कुत्सित, पाप-भावित, पाप-पूरुष,
सोचते नित सब रहे हैं पाप ही कर" ॥९२॥

किन्तु क्रुद्ध गुरुसुत पड़ा पिल शत्रु दल पर,
मार शत पंचाल रथियों को गिराया।
पार्थ उत्तर भीम दक्षिण से भिड़े जब,
कौरवों को द्रोण के संमुख भगाया॥९३॥

द्रोण ने धावा युधिष्ठिर पर दिया कर,
धर्मसुत ने पाँच मारे वाण भीषण।
व्यथित गुरु ने चाट सूखे होठ सत्वर,
काट डाले धर्म - सुत के ध्वज शरासन॥९४॥

पर युधिष्ठिर ने धनुष ले अन्य दृढ़तर,
किया सब को विद्ध—सारथि, द्रोण, हय, रथ,
हो अचेत मुहूर्त्त भर बैठे रहे गुरु,
पृष्ठ में रथ के शरों से प्रहृत दुर्व्यथ ॥६५॥

कुपित तब वायव्य शर गुरु ने चलाया,
धर्मसुत ने उसी शर से उसे काटा।
छिन्न करके एक झट फिर दूसरा भी
द्रोण का कार्मुक, शरों से अजिर पाटा ॥६६॥

तब युधिष्ठिर से कहा यदु-तिलक ने आ—
"आप होवें द्रोण से न कभी समर-पर।
आप को आचार्य जीवित ही पकड़ना,
चाहते हैं सव्यसाची से अलग कर ॥६७॥

उन्हें धृष्टद्युम्न मारेंगे समय पर,
युद्ध नृप का नृपति से ही उचित संगत।
आप जाएँ जहाँ दुर्योधन रहा लड़,
भीम, अर्जुन से इधर सब योध प्रतिहत" ॥६८॥

लड़ रहे थे भीम दुर्योधन कुपित हो,
भीम के थे धनुष छिन्न कई निरन्तर।
शक्ति भी जो भीम ने उस पर चलाई,
काट दुर्योधन उसे भी हँसा तज डर ॥६९॥

भीम ने तब एक बृहत गदा चला दी,
हुए जिससे नष्ट तीनों—सूत, रथ, हय।
भीत दुर्योधन वहाँ से भाग आया,
शीघ्र रथ पर अन्य भट के ढूँढ़ आश्रय ॥१००॥

भीम ने समझा हुआ मृत कौरवाग्रज,
सिंहनाद किया प्रहृष्ट अतः भयंकर।
देख सुन यह हुए कौरव शोक - विह्वल,
धर्मराज प्रमुदित पहुँचे वहाँ सत्वर ॥१०१॥

सिर अलंबुष, अलायुध का काट असि से,
इधर पहुँचा पास वृष के भी घटोत्कच।
कौरवों में छा गया आतंक उस का,
गया चारों ओर हाहाकार ही मच ॥१०२॥

"ऐन्द्र शक्ति अमोघ इस पर ही चलाओ।
कर्ण ! जो आये जुगाते पार्थ के हित।
हम सबों को मार डालेगा अभी यह,
क्या करेगी वह अनन्तर यत्न-रक्षित ?॥१०३॥

यदि घटोत्कच से अभी हम त्राण पाएँ,
तो लड़ेंगे भीम, अर्जुन से सभी मिल"।
आर्त्त कुरुओं का सभी यह नाद सुनकर
कर्ण के संकल्प, निश्चय, धृति गए हिल ॥१०४॥

अन्त में हैडिम्ब के उत्पात से क्रुद्ध,
दी चला ही शक्ति राधातनय ने वह।
वक्ष तत्क्षण दिया उसका चीर जिसने,
गिरा वह निष्प्राण कर गर्जन भयावह ॥१०५॥

हृष्ट कुरुओं ने बजाये शंख, आनक,
हो गए मुख पाण्डवों के शोक-श्यामल।
झूम कृष्ण उठे प्रमद से अंक में भर,
पार्थ को पर, ज्यों मिला कोई विरल फल ॥१०६॥

कहा केशव ने—"अमोघ चुकी निकल, छिन
शक्ति कर से कर्ण के मृति-भीति-कर वह।
शक्ति-युत वह मृत्यु ही था मूर्त्त अरि की,
अब अविष वह सर्प, अनुदर राहु है ग्रह ॥१०७॥

थी रखी वध-हेतु मेरे या तुम्हारे
यत्न से वह कर्ण ने संकल्प कर स्थिर।
था नहीं कोई हमारे पास वारण,
घुल रहा था मैं इसी नित आधि में घिर ॥१०८॥

थी तुम्हारी मृत्यु उससे ध्रुव अभी तक,
मृत्यु-मुख-निर्गत तुम्हें मैं अब समझता।
आज तक कोई न कोई ढूँढ़ मिष मैं,
कर्ण से न अतः समर में था उलझता ॥१०९॥

पुनः दुर्योधन निकट जा व्यथित बोला
द्रोण से—'क्यों दिव्य अस्त्र नहीं चलाते?
काम कब ब्रह्मास्त्र आएगा? रहेंगे
पाण्डवों पर प्रीति अब कब तक दिखाते? ॥११०॥

द्रोण बोले—"चाहते कौरव्य क्या तुम?
आततायी बनूँ? संगर करूँ कुत्सित?
जो अपरिचित हैं अमानव प्रहरणों से,
दिव्य अस्त्रों से न उन से मैं युयुत्सित ॥१११॥

पर तुम्हारी यदि अनीति यही अभिलषित,
तो करूँगा हेतु तेरे पाप वह भी।
सुन, पुनः जो किन्तु जय्य न सव्यसाची,
व्यर्थ उस पर दिव्य अस्त्रों का निवह भी ॥११२॥

जित महेन्द्र स्वयं हुए खाण्डव-दहन में,
चित्रसेन विजित हुआ गन्धर्वपति भी।
हत निवात-कवच हुए सुर-शत्रु अगणित,
की अदम्य हिरण्यपुर-जन की निहति भी ॥११३॥

अरे! राक्षस, यक्ष, सुर, गन्धर्व, दानव
जीत उस को आज तक कोई न पाया।
देख तुम भी तो चुके कुछ शौर्य उस का,
जा सकेगा वह न त्रिभुवन से हराया ॥११४॥

कर्ण, दुःशासन, शकुनि या तुम्ही जाओ,
कुलज क्षत्रिय सभी, प्राणों का तजो भय।
खड़ा संमुख पार्थ, क्षत्रिय-धर्म पालो,
पाप-निश्चय तुम, प्रजा का हो रहा क्षय ?" ॥११५॥

टूट पर पंचाल, मत्स्यों पर पड़े गुरु,
द्रुपद और विराट का भी वध दिया कर।
आततायी सा चला दिव्यास्त्र, भूना
अनस्त्रज्ञ समूह को हो क्रौर्य-तत्पर ॥११६॥

की प्रतिज्ञा देख धृष्टद्युम्न ने यह,
"वध करूँगा आज गुरु का तातघाती"।
कृष्ण बोले—"शस्त्र-कर हैं द्रोण जब तक
मृत्यु उनकी समझ में मेरी न आती ॥११७॥

उतर वे आए दुरित पर, दुरित से ही
लग रहा उनका हनन करणीय संभव।
त्यागने पर हो धनुष होंगे निहत वे,
श्रवण अश्वत्थाम-वध का कर अशिव रव ॥११८॥

था वहाँ गज एक अश्वत्थाम-नामक,
भीम ने मारा उसे रख कपट मन में।
कहा गुरु को सुना—"अश्वत्थाम-वध से,
पाण्डवों ने विजय पाई आज रण में" ॥११९॥

दिया साक्ष्य अजातरिपु ने कृष्ण-प्रेरित,
"अहा ! अश्वत्थाम-वध मेरी विजय है।
वीर-कुन्जर था उपद्रव-कर बहुत वह,
कौरवों से अब मुझे उतना न भय है" ॥१२०॥

द्रोण धृष्टद्युम्न दोनों लड़ रहे थे,
प्राण-पण से शिष्य-गुरु का भूल नाता।
बात सुनते ही अशुभ यह द्रोण चौंके,
युद्ध का सारा रहा उत्साह जाता ॥१२१॥

भीम बोले—"धर्म ब्राह्मण का अहिंसा,
युद्ध क्षत्रिय-कर्म, ब्राह्मण-हेतु दुष्कृत।
घात में इस भाँति लाखों के उदर-हित
आयु में इस भी न होते आप लज्जित" ? ॥१२२॥

द्रोण सुत-वध-व्यथित सुन वेधक वचन यह,
शस्त्र तज कर बैठ मूँद गए नयन-द्वय।
झपट चोटी पकड़ तत्क्षण काट धड़ से
सिर लिया असि से द्रुपद-सुत ने विगत-दय ॥१२३॥

देख गुरु-परिभव किरीटी क्रुद्ध दौड़े,
मारने को श्याल को निज त्याग धीरज।
कृष्ण ने जब दौड़ पकड़ लिया उन्हें झट,
बहुत समझाया, सके मन मार तब तज ॥१२४॥

द्रौणि ने नारायणास्त्र चला दिया सुन,
तात गुरु का हनन-परिभव अतिकुपित जब।
अस्त्र नीचे डाल क्षिति पर सो गये सब,
त्राण प्राणों का सबों के हो सका तब ॥१२५॥

प्रकट आग्नेयास्त्र भी उसने किया द्रुत,
एक जिस से हो गई अक्षौहिणी हत।
देख अर्जुन, कृष्ण को पर पूर्ण सकुशल,
विमन तज रथ, चाप रण से हुआ अपरत ॥१२६॥

देख आगे व्यास को बोला स्तिमित-मति—
"तात! क्या है बात समझ तनिक न पाता।
दोष-युत क्या अस्त्र था कि, प्रयोग उस का,
कृष्ण, अर्जुन पर दिखा वह व्यर्थ जाता"! ॥१२७॥

व्यास बोले—"द्रोण-सुत! ये पूर्व ऋषि दो,
कृष्ण नारायण, धनंजय है स्वयं नर।
क्षय्य, जय्य त्रिकाल त्रिभुवन में न हैं ये,
दिव्य अस्त्र सफल इन्हीं से प्राप्त कर वर ॥१२८॥

करो निज कर्त्तव्य तुम, पर शीघ्र ही अब,
धर्मसुत की भूमि होगी वश्य सारी।
हत हुआ उत्साह यह सुन द्रौणि का सब,
अब रहा राधेय ही नेतृत्वकारी ॥१२९॥

बैठ पछताते रहे उस रात चारो
कर्ण, दुर्योधन अनुजयुत, शकुनि उन्मन।
क्यों दिये नित क्लेश सज्जन पाण्डवों को,
क्यों सभा में किया कृष्णा का प्रधर्षण? ॥१३०॥

कर्ण सेनानी हुआ पर दूसरे दिन,
सूतसुत के सूत शल्य स्वयं गये बन,
और कौरव पाण्डवों में भूल सबा फिर,
छिड़ गया उत्साह से दूने महारण ॥१३१॥

कर्ण ने पाण्डव-चमू को मथ भयानक
आक्रमण सत्वर युधिष्ठिर पर दिया कर।
धर्मसुत ने देख यह शर एक पवि-सम,
कर्ण के वध-हेतु छोड़ा तान उस पर ॥१३२॥

पार्श्व में बाएँ घुसा वह, कर्ण मूर्च्छित
हो गिरा निष्प्राण सा रथ पर धनुष तज।
ज्येष्ठ पाण्डव ने स्मरण कर अनुज का प्रण,
फिर प्रहार किया न उस पर बाँध धीरज ॥१३३॥

कर्ण ने पर चेतना पा द्रुत पराजित
कर युधिष्ठिर को कहा अतिकटुक कुवचन
और कुन्ती से किए पण का स्मरण कर,
शक्त रहकर भी किया उनका न निहनन ॥१३४॥

फिर चला वह शल्य के सारथ्य में बढ़
भीम से लड़ लगे हाथ उसे हराने।
और उन में धनुर्युद्ध छिड़ा भयानक,
लगे दोनों के गगन में बाण छाने।।१३५

कर्ण से हृतचाप, विद्ध शरीर, प्रकुपित
भीम ने नव धनुष ले नव इषु चलाया।
कर्ण मूच्छित हो गिरा रथ पर उसी क्षण,
अशनि-शर ज्यों चीर तन में वह समाया।।१३६।।

कर्ण-रथ पर भीम को आते कुपित दृग
देख बोले शल्य "इस का मत करो वध"।
भीम बोले—जीभ इसकी काट लेना
चाहता था, यही इसका उचित औषध।१३७।

सामने मेरे अधम ने द्रौपदी को,
धर्मसुत को वचन अतिकटु हैं सुनाये।
कोप मेरा शान्त हो न रहा तनिक भी,
देख मूच्छित भी इसे व्रण उग्र पाये।।१३८।।

पर दिलाया आपने है स्मरण सुसमय,
भग्न-प्रण बीभत्सु देंगे प्राण ही तज।
और होंगे नष्ट तब हम भी सकेशव,
अतः कुछ क्षण और चल वह जिए सूतज।।१३९।।

शीघ्र कुमति, नृशंस इस पापिष्ठ का वध
स्वयं अर्जुन ही करेंगे वीर-पुंगव"।
प्राण-दान उसे दिया कह भीम ने यह,
कर्ण को ले शल्य भागे त्याग आहव ॥१४०॥

उधर अर्जुन से विमर्दित हुए गुरुसुत,
भीम से था इधर दुर्योधन पराजित।
कर्ण ने सब को मथा पर चेतना पा,
धर्मसुत, सहदेव, नकुल हुए जितोज्झित ॥१४१॥

किया उत्तेजित युधिष्ठिर, कृष्ण ने तब
पार्थ को राधेय के दुष्कृत गिना कर—
'पापमति इस क्षुद्र पाण्डव द्वेषकारी
कर्ण को मारो समय न अधिक वृथा गंवा कर ॥१४२॥

दहन कुन्ती का ससुत लाक्षा भवन में,
शकुनि गान्धारेय का ग्लह-हित प्रवर्तन।
पाण्डवों का षण्ढ तिल कह कर पराभव,
द्रौपदी का चैल-हरण, शिरस्य-कर्षण ॥१४३॥

दुधमुंहे सौभद्र का सब काट आयुध
वध नृशंस महारथों से मिलित हो छह।
भूमिका खल की इसी सब में प्रमुख है,
दुष्ट यह विषघट पयोमुख है भयावह ॥१४४॥

(१) महाभारत कर्ण० ७३-६२, ७२-३४; ७३-७०, ८०, ८१, ८२, ८९।

काट पीछे से धनुष इसने गिराया,
हँसा एकाकी यही, वह हत हुआ जब।
करो वध इस के तनय वृषसेन का ही
सामने इसके प्रथम इस अधम का तब। १४५॥

भीष्म, भारद्वाज को पाषत-सुतों ने
रह सुरक्षित मात्र तुम से अभय मारा
आततायी का जयद्रथ तुल्य पर इस
वध तुम्हारा कार्य, आर्जव त्याग सारा" ॥१४६॥

"ठीक है कर क्रोध भी सकता उसी विधि,
आ रहा हूँ मैं क्षमा जिस भाँति करता"—
कह किरीटी यह चले राधेय-संमुख,
स्मरण कर अभिमन्यु-वध की अनय-परता ॥१४७॥

उधर दुःशासन हुआ लड़ भीम से जित,
भूशयित रण में गदा की चोट खाकर।
कूद रथ से खड्ग ले तब भीम दौड़े,
गरज कर उस को कहा सब को सुना कर—॥१४८॥

'बैल' तुम ने ही कहा था दुष्ट मुझको,
द्रौपदी के तुम्हीं ने खींचे शिरोरुह।
हाथ मैं हूँ तोड़ता वह आज तेरा
और पीता फाड़ छाती हूँ लहू दुह ॥१४६॥

कर्ण, दुर्योधन, हृदिकसुत. द्रौणि, कृप मिल
लें बचा; इसके हनन-हित जा रहा मैं।
द्रौपदी के केश-ग्रहण, वसन-हरण का
यथापण प्रतिशोध आज चुका रहा मैं" ॥१५०॥

सत्य ही यह कह उखाड़ी बाँह उसकी,
पीटने उसको उसी से लगे निर्दय।
और छाती फाड़ उसकी रक्त पोकर
गर्म, ले आनन्द करने नृत्य निर्भय ॥१५१॥

देख कर वृषसेन को जय ने इधर भी
कर्ण, दुर्योधन, गुरु-तनय को कहा हँस—
"मैं अभी यमलोक भेज रहा इसे हूँ,
लो बचा मिल तीन इसको सब चला बस ॥१५२॥

एक था अभिमन्यु तुम थे छह महारथ,
यश न बाल निरस्त्र के वध से कमाया।
कर्णसुत वृषसेन को इस मार संमुख
कर्ण का प्रतिशोध चाह रहा चुकाया" ॥१५३॥

यह सुना वृषसेन का सिर काट डाला
निशित शर से श्वेतहय ने एक तत्क्षण।
देख दुशासन तथा वृषसेन की गति
कर्ण का भी काँप साध्वस से उठा मन ॥१५४॥

पर बढ़ाया शल्य ने उत्साह उसका,
आ डटा वह पार्थ के संमुख समर-हित।
शल्य से पूछा—"करेंगे आप क्या तब,
पार्थ-द्वैरथ में हुआ यदि मैं विजित, मृत" ॥१५५॥

शल्य बोले—"आज द्वैरथ में करेंगे
समझ लो यदि वध तुम्हारा श्वेतवाहन।
तुरत अर्जुन कृष्ण दोनों का करूँगा
एक रथ से वध स्वयं मैं काल ही बन" ॥१५६।

कृष्ण से भी पार्थ ने पूछा यही जब,
कृष्ण ने तत्क्षण धनंजय से कहा हँस—
"प्रश्न यह उठता न साथ सखे! तुम्हारे,
कौन तुम से जीत पाया है कभी कँप ?॥१५७॥

जलधि सूखेगा? गिरेगा गगन से रवि?
आग होगी शीत? प्रलयंगत जगत् यह?
बाहु मेरी सजग दोनों के लिए तब,
कर्ण शल्य न अहत पाएँगे कभी रह॥१५८॥

"हैं न मेरे ही लिए पर्याप्त ये तो,
कह पड़े कपिकेत यह सुन मुसकिरा कर
मैं रहूँगा आज ही राधेय को इस
सास्त्रशस्त्र सकवचरथ यमपुर पठा कर॥१५९॥

मान कलहजित द्रौपदी को पकड़ मँगवा
इसी पापी ने कराया नग्न निस्त्रप।
आज भी कर स्मरण घटना का निठुर उस
दृग उगलते आग जाती देह है तप ॥१६०॥

कृष्ण बोले—"कर्ण को मारो नमुचि, वज्र,
शम्भ को ज्यों वृत्रहा ने अदय मारा।
कंस मुझ से स्कन्द से तारक, दशानन
राम से, शिव से गया अन्धक पछाड़ा ॥१६१।

कर्ण अर्जुन द्वन्द्व-दर्शन हेतु आए
छा गया दैत्यों, सुरों से द्रुत नभस्थल।
को। जीतेगा, पराजित कौन होगा
प्रश्न पर इस हो गए बँट तुरत दो दल-।१६२॥

इन्द्र, मरुत, कुबेर, सोम, पवन, वरुण, यम,
अग्नि, द्विज, श्रुति, पितर, ऋषि गण पार्थ-सख थे।
असुर, प्रेत, पिशाच, राक्षस, शूद्र, संकर,
सर्प, जम्बुक मुदित रविसुत को निरख थे ॥१६३॥

विजय सुरपति थे धनंजय की मनाते,
इष्ट था आदित्य का पर कर्ण की जय।
देवगण बीभत्सु का शुभ चाहते थे,
असुर-प्रार्थित कर्ण का था किन्तु उच्चय।१६४॥

तब विधाता से सुरेश्वर ने कहा जा—
"विजय भगवन्! पार्थ की ही हो सुनिश्चित"।
कहा शिव, विधि उभय ने— 'जित कर्ण होगा,
विजय होगी विजय की यह देव-वाञ्छित।।१६५।।

कृष्ण अर्जुन कुपित होकर उलट सकते
नियति को या अवनि को ही, भुवनपति ये।
परम ऋषि नर और नारायण सनातन,
ये नियम्य नहीं, नियन्ता युगल यति ये।।१६६।।

कर्ण दानव पक्ष्य, अर्जुन देव-गृह्यक
धनुर्वेद निपुण, मनस्वी, शुचि, तपोधन।
समर तोषित हो चुके जिस से पिनाकी,
विष्णु भी जिसके बने सारथि मुदित-मन" ।।१६७।।

ज्यों हुआ आरब्ध रण, क्षण में गए बिछ
विशिख तीखे व्योम में गाण्डीव-धर के।
कौरवों के कट लगे गिरने तुरग, गज
अस्त्र, कर पद; सिर लुढ़कने बिना धड़ के।।१६८।।

रौद्र रूप निहार बोले द्रौणि जय का,
पकड़ कर सप्रणय—दुर्योधन! समय है।
पाण्डवों से सन्धि अब भी लो सखे! कर,
कर्ण से निश्चय धनंजय यह अजय है।।१६९।।

कुद्ध किसी का वश न फाल्गुन पर चलेगा,
भीष्म-गुरु-सम अस्त्रवित्तम हो गए हत,
मैं तथा मातुल अवध्य, अतः रहे जी,
पाण्डवों के साथ भोगो राज्य शम-रत ॥१७०॥

पार्थ मुझ से हो निवारित शान्त होंगे,
कुल-कलह यह चाहते न कभी जनार्दन।
भूत-हित-रत सतत विदित अजातरिपु हैं,
भीम, यमज अधीन उनके हैं प्रतिक्षण। १७१॥

शेष अब भी स्वगृह लौटें बन्धु, नृप, भट;
हित तुम्हारे हाथ है जगका प्रजा का।
पाण्डवों से अन्यथा जित निहत होगे;
सब सुखी हों अन्त हो इस आपदा का ॥१७२॥

साँस लम्बी ले कहा धृतराष्ट्र-सुतने—
"भूल दुःशासन-हनन पाता न पल भर,
और लड़कर श्रान्त अब तो पार्थ का मैं
देखता वध कर्ण के हाथों सरलतर" ॥१७३।

कर्ण अर्जुन में गया रण अन्ततः ठन,
हो गए शर-जर्जरित लड़ वे परस्पर।
शेष भट इस द्वन्द्व के दर्शक गए बन,
कट मरे, भागे समर वा देख वह डर ॥१७४॥

दिव्य आते देख उसका बीच में ही
यह गिराता दिव्य ही से काट कर शर।
बह रहे थे रक्त दोनों के तनों से,
लाल जल बरसा रहे ज्यों शैल-निर्झर ।।१७५।।

सर्पमुख शर कर्ण ने यह सोच छोड़ा—
"काट ग्रीवा ही विजय की क्यों न लूँ झट"?
कृष्ण ने रथ को, हयों को पर झुकाया,
बस किरीट गिरा किरीटी का अतः कट।।१७६।।

कुपित अर्जुन ने शरों से कर्ण के तब
कवच कुण्डल काट बेधा भाँति इस तन।
धनुष तरकस कर्ण के छूटे करों से
मर्माहत रथ पर गिरा हो वह अचेतन ।।१७७।।

देख संकट-ग्रस्त उस को पार्थ उसके
हो गए वध से विरत सत्पुरुष-व्रत-धर।
कृष्ण ने यद्यपि कहा—'मारो दया तज,
शत्रुवध का छिद्र ही होता सुअवसर" ।।१७८।।

पार्थ बोले—'चाहता है अंगपति का
वध न करना कुपित भी हो मन दयावश।
मोह से आते दृगों में अश्रु भर भर,
जान सकते यह रहस्य सखे! तुम्ही बस" ।।१७९।।

पार्थ के मृदुयुद्ध मे तब तक पुनः पा
चेतना राधेय बरसाने लगा शर।
पार्थ के आग्नेय को वारुण विशिख से
कर्ण ने घन सिरज शान्त तुरत दिया कर ॥१८०॥

नष्ट जलदों को दिया कर कर्ण-निर्मित
पार्थ ने शतमन्यु के वज्रास्त्र बरसा।
कर्ण ने भी भार्गवास्त्र अभय चला झट
काट डाले वज्र-शर वे मार फरसा ॥१८१॥

कृष्ण बोले—"द्वन्द्व से तोषित तुम्हीं ने
था किया हरको, गया चढ़ मोह अब फिर ?
कर्ण का काटो कठोर बना हृदय निज
शीघ्र मेरे ही सुदर्शन चक्र से सिर ॥१८२॥

माँग अनुमति कृष्ण, ब्रह्मा, शिव, सुरो से
कर्ण पर ब्रह्मास्त्र फाल्गुन ने चलाया।
पर उसे भी बाण बरसा अमित-संख्यक,
कर्ण ने फिर काट वन्ध्य बना गिराया ॥१८३॥

परशुराम-गृहीत आथर्वण विशिख से,
कर्ण जय के नष्ट कर दिव्यास्त्र देता।
कभी लगता कर्ण अर्जुन से हुआ जित,
कभी दिखता कर्ण ही होता विजेता ॥१८४॥

चक्र रथ का वाम कीचड़ में धँसा त्यों,
कर्ण हतमति हो गया भार्गव बिसर शर।
स्तब्ध विकल विलाप तब करने लगा वह,
चक्र को कर से उठा हो विफल, धुन सर—॥१८५॥

"धर्म का पालन सदा मैंने किया है,
धर्म करता आज मेरा क्यों न पालन"?
उधर अर्जुन कृष्ण से प्रेरित अनारत
छोड़ते पल भर नहीं थे शस्त्र-चालन॥१८६॥

कर्ण ने ब्रह्मास्त्र शीघ्र चला दिया तब,
पार्थ ने ऐन्द्रास्त्र से काटा उसे द्रुत।
कर्ण ने गाण्डीव-गुण तब तुरत बहुशः
काट प्रकट किया पराक्रम, स्फूर्ति अद्भुत॥१८७॥

और बोला—"पार्थ से क्रोधाश्रु बरसा—
"तुम रथस्थ क्षितिस्थ मैं रोको समर यह।
पंक-ग्रस्त निकाल लूँ यह चक्र जब तक,
आक्रमण से एक पल तेरे अभय रह॥१८८॥

कापुरुष सा बाण बरसाओ न मुझ पर,
श्वेतहय! रण-धर्म-निर्वाहक प्रथित तुम।
शूरतम, दिव्यास्त्र-पटु, श्रुतिकुशल, सुचरित
कार्तवीर्य-समान जगती में कथित तुम"॥१८९॥

कृष्ण बोले—"कर्ण अचरज है, तुम्हें भी
शूरता का, धर्म का रहता स्मरण है।
कोसता है शठ नियति को पड़ विपद में,
भूल जाता कुटिल अपना आचरण है॥१६०॥

वीर अपने को समझते अप्रतिम तुम,
शूर सच्चा है न होता किन्तु पापी।
आततायी का किसी जो साथ देता
शूर कहलाता न वह जनतोपतापी॥१६१॥

द्रुपद पर कर आक्रमण पिट भाग निकले,
युद्ध में उस शौर्य तेरा क्यों न जागा?
विप्र अर्जुन से स्वयंवर-युद्ध में भी
पा पराजय शौर्य तेरा क्यों न जागा?॥१६२॥

हो परास्त बृहन्नला से गोहरण में
लौट आये, शौर्य तेरा क्यों न जागा?
बार बार विजित युधिष्ठिर, भीम, सात्यकि
से हुए जब, शौर्य तेरा क्यों न जागा?॥१६३॥

मित्र दुर्योधन हुआ जब चित्ररथ से
बद्ध वन में, शौय तेरा क्यों न जागा?
पार्थ! से तेरा तनय वृषसेन संमुख
जब हुआ हत, शौर्य तेरा क्यों न जागा?॥१६४॥

सायकों से प्रखरतम अभिमन्यु के बिंध
शल्य ने, तुमने किया यह क्रूर आग्रह।
यदि करें आक्रमण सकल महारथी मिल,
निहत हो सकता तभी संग्राम में यह। १९५॥

द्रोण का संकेत पाकर निन्द्यतम तब,
प्रथम तो काटा तुम्हीने था शरासन।
अभय हो हार्दिक ने मारा हयों को
पार्श्व-पालों का किया कृप ने विनाशन॥१९६॥

छिन्न-कार्मुक-रथ बढ़ा असि चर्म ले वह,
काटने शर-पत्र-वन सा लगा रिपुदल।
द्रोण ने ही काट असि, तब ढाल तुमने
पड़े एक निरस्त्र पर तुम टूट छह खल॥१९७॥

पङ्क में केवल धँसा रथ है, अभी तो,
अस्त्र शस्त्र सकल, तुम्हारे अङ्ग अक्षत।
पार्थ एकाकी रहे तुम से सरथ लड़,
आ करें रक्षा तुम्हारी मित्र संहत।१९८॥

धर्म की देने दुहाई हो लगे तुम
डूब कीचड़ में तुम्हारा जब गया रथ।
अब जगा उपदेश-कौशल है तुम्हारा,
एक अर्जुन हो तुम्हें जब है रहे मथ॥१९९॥

क्षात्र-गौरव, शौर्य, धैर्य न एक भी है,
तनिक भी तुम में मुझे तो आज लगता।
भूप के जन्मान्ध लोभ - मदान्ध सुत को,
तू दिखा साम्राज्य-स्वप्न सदैव ठगता ॥२००॥

वध पितामह का स्वयं आचार्य का या
पार्थ ने माना किया न समर्थ रहते।
शल्य, कृप, हार्दिक्य से भी मृदु करें रण,
क्यों अनीति रहें तुम्हारी किन्तु सहते? ॥२०१॥

परामर्श, कुमन्त्र सब मात्सर्यवश ही
क्या नहीं तुमने सुयोधन को दिये थे?
पार्थ की ही कीर्ति से जल क्या न केवल,
दान, तप, जप, यज्ञ सब आसुर किये थे? ॥२०२॥

विष खिला, डँसवा भुजग से भीम का जब
था कराया हनन, धर्म कहाँ गया था?
जब जलाया पाण्डवों को लाह-घर में
सुप्त माँ के साथ, धर्म कहाँ गया था? ॥२०३॥

जब हराया द्यूत-कपट करा शकुनि से
धर्म-सुत को बुला, धर्म कहाँ गया था?
जब सभा में एक-वसना द्रौपदी को
था कराया नग्न, धर्म कहाँ गया था? ॥२०४॥

लुलित-वाला सतीरत्न रजस्वला को
जब मँगाया खींच, धर्म कहाँ गया था ?
पाण्डवों को तज वरण-हित अन्य पति के
जब कहा सोत्प्रास, धर्म कहाँ गया था ? ॥२०५॥

जब न सौंपा वर्ष तेरह बीतने पर
पाण्डवों का राज्य, धर्म कहाँ गया था ?
सन्धि-दूत मुझे बनाने हेतु बन्दी
योजना जब बनी, धर्म कहाँ गया था। ॥२०६॥

पड़े टूट महारथी छह एक शिशु पर
भग्न-रथ, शस्त्रास्त्र धर्म कहां गया था ?
शत्रु रोये देख निष्ठुर घृणित वध यह,
तुम हँसे अति मुदित, धर्म कहाँ गया था ! ॥२०७॥

सुन वचन कटु सत्य यह राधेय हरि का
हो गया लज्जावनत-मस्तक, निरुत्तर ।
क्रोध में स्फुरितोष्ठ धनुष पुनः उठा वह
सव्यसाची से भिड़ा हो समर-तत्पर ॥२०८॥

कहा केशव ने—"नृशंस, कुटिल, अधम यह
पाण्डवों का स्वार्थ-रहित अनिष्टकारी।
पापियों का पाप से भी वध सुकृत है,
सुअवसर चूको न यह गाण्डीवधारी ॥२०९।

करो इस का वध हिचक सब छोड़ सद्यः,
दिव्य शर से, कर विलम्ब न एक भी पल।
सकल उतरदायिता है एक इस पर,
जड़ महाभारत समर की एक यह खल।।२१०।।

कृप, पितामह, व्यास, गुरु ठुकरा सबों को
दुष्ट दुर्योधन लड़ा इस एक की सुन।
स्मरण कर अति करुण सुत के मरण का क्षण
स्वप्न मानों त्याग जागे कुपित अर्जुन।।२११।।

रोम-रोम लगे उगलने आग उनके,
कर्ण ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा देख कर यह।
व्यस्त कर कौन्तेय को सहसा इसी में
खींचने रथ-चक्र यावद्बल लगा वह।।२१२।।

शान्त कर ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से ही
कर्ण पर आग्नेय अर्जुन ने चलाया।
कर्ण ने उसको बुझाया छोड़ वारुण,
अवनि पर जिससे तिमिर घनघोर छाया।।२१३।।

फाड़ उस को भी दिया वायव्य से जब
सव्यसाची ने तुरत रह अविचलित हँस।
कर्ण ने शर एक भीषण से विजय का
विद्ध वक्षस्थल दिया कर वीत-साध्वस।।२१४।।

चोट खा मूर्छित हुए श्लथ-हस्त-गाण्डिव
पार्थ ज्यों, राधेय ने पाया सुअवसर ।
चक्र खींचा भींच रद दोनों करों से,
हुआ अंगदपद, उठा वह पर न तिल भर ।।२१५।।

जिष्णु ने तब कुपित हो तत्क्षण निकाला,
आञ्जलिक, यमदण्ड तुल्य अमोघ सायक ।
"काट लो सिर कर्ण का जब तक रथस्थ न
हो पुनः वह जाय बोले वृष्णिनायक ।।२१५।।

पार्थ-शर वह देख काँप उठा चराचर,
"हो जगत् का स्वस्ति" ऋषियों ने पुकारा ।
छूटते ही उस तडित्-सम बाण से कट
कर्ण का सिर गिर पड़ा ज्यों टूट तारा ।।२१६।।

प्राण-संकट पार्थ को देकर प्रबल प्रतिरोध
सिंह से गज सा हुआ वृष विजय से आक्रान्त ।
पण किरीटी ने लिया कर अन्ततः निज पूर्ण,
और प्रतिभट का पराक्रम से किया प्राणान्त ।।२१७।।

कर्ण को भी पार्थ से इस भांति जित, हत देख
झूम पाण्डव-दल उठा कर शंख पणव निनाद ।
दीन दुर्योधन हुआ, कौरव पलायित, भीत
धर्म की अन्तिम विजय की रह गई मरजाद २१८।।

सोपान—८

निहत कर्ण के होते ही उत्साह समर का टूटा,
संधि-हेतु अनुरोध किया कृप ने दुर्योधन से फिर।
किन्तु छूटती कहाँ ऐंठ रस्सी के जलने पर भी ?
रहा दुराग्रह पर ही अब भी दुर्योधन अपने स्थिर ॥१॥

सेनापति बन शल्य युधिष्ठिर से लड़ हुआ विजित, हत,
ससुत शकुनि भी हो सहदेव-निहत यम लोक सिधारा।
दुर्योधन की जाँघ भीम ने गदा-युद्ध में तोड़ी,
भग्नदंष्ट्र आशीविष सा उसने सरोष फुफकारा ॥२॥

दुर्योधन को निहत देख भट लगे कूदने हँसने,
धार्तराष्ट्र को कोस भीम का करने जब अभिनन्दन।
मधुसूदन ने कहा—"शस्त्र-हत रिपु का वचन-शरों से
तीखे अनुचित पुनर्हनन, शव-सम का करना गञ्जन ॥३॥

पाप-सहाय, अलज्ज, कुमति, अघ, लुब्ध मरा यह तब ही,
दिया पाण्डवों का न दाय, सुहृदों का कहा न माना।
क्षत्ता, संजय, भीष्म, व्यास, गुरु, कृप सब समझा हारे,
हुआ अन्ततः अस्त नराधम चल संतत मनमाना" ॥४॥

भर अमर्ष में अधिक्षेप माधव का सुन दुर्योधन,
बैठ खञ्जपद बोला दोनों हाथ टेक धरती पर।
भौंहें टेढ़ी कर अर्धोत्थितनु भुजंग सा कुचले
प्राणान्तक आघात-वेदना की भी अवहेला कर ॥५॥

"कंस-दास-सुत ! लाज न लगती सिखा भीम को तुमने,
छिह ! अधर्म से गदायुद्ध में मुझे स्वयं मरवाया।
झूठ धर्मसुत से कहला गुरु का तजवाया कार्मुक,
स्त्रैण शिखण्डी से तुम ने गङ्गासुत-वध करवाया ॥६॥

अर्जुन-घातक शक्ति घटोत्कच-वध से नष्ट करा दी,
सात्यकि-रण-रत सौमदत्ति का, वध करवाया जय से।
कर्ण शर-स्थित अश्वसेन को किया तुम्हीं ने व्यंसित,
पङ्क-मग्न-रथ वृष का भी साधा वध घोर अनय से ॥७॥

द्रोण, भीष्म, अङ्गाधिप या मुझसे ही यदि होता रण,
धर्म-मार्ग से, तो न पाण्डवों की कदापि होती जय।
तुझ अनार्य ने धर्ममार्ग से लड़ते कुरु-कुलजों का
पद-पद पल-पल में कुमार्ग से केवल किया क्षिया-क्षय" ॥८॥

कहा कृष्ण ने—"पापों से ही गान्धारेय तुम्हारे,
भाई, बान्धव, सुहृद, भृत्य, सुत, गये युवक सब मारे।
द्रोण भीष्म-वध हुआ साथ देने से ही पापी का,
कर्ण हुआ हत क्यों कि अनर्थों को वह जड़ था सारे ॥९॥

लोभ-ग्रस्त, राधेय-शकुनि-दुःशासन-मन्त्रित-प्रेरित
दिया पित्र्य भी राज्य पाण्डवों का तुमने न कुमति-वश।
दिया भीम को विष, कुन्ती को चाहा ससुत जलाना,
जीता तुमने पाण्डु-सुतों का कूट-द्यूत से सरवस ।।१०।।

वध्य हुए तुम तभी याज्ञसेनी रजस्वला को जब,
वेणी पकड़ घसीट सभा में दुःशासन था लाया।
किया जयद्रथ ने भी वन में उसको अपहृत, धर्षित,
छह ने तुम मिल शस्त्र-हीन बालक को मार गिराया ।।११।।

लड़ विपक्ष से पाण्डव-दल का भीष्म कर रहे थे क्षय,
अतः बन्धु-हित उनका वध था अनघ शिखण्डी द्वारा।
विप्र-धर्म को त्याग कर रहे थे संहार विकट नित,
याज्ञसेनि ने इसीलिए गुरु को भी उस विधि मारा ।।१२।।

सौमदत्ति का हनन किया जो विजय तथा शिनिसुत ने,
पूर्व प्रतिज्ञा की रक्षा के ही हित वह सर्व-विदित।
अनय किया करते न करेंगे रण में कभी कपिध्वज,
स्वयं कर्ण भी उनसे बहुशः हुआ त्यक्त जित, जीवित ।।१३।।

विजित विराट नगर में एकाकी अर्जुन से थे तुम,
द्रोण, भीष्म, कृप, द्रौणि, कर्ण सब का मद तोड़ा सारा।
तुम्हें दिलाया गन्धर्वों से लड़ जीवन वह अ[illegible] था?
अवसर पाकर भी अनेक जय ने न किसी को मारा ।।१४।।

विजय धर्म की ही होती अन्तिम यह हुआ प्रमाणित,
पाण्डव विजयी हुए धर्म से; तुम अधर्म से हारे।
हमने भी शठ से शठता, मायावी से की माया,
गये भोगते फल तुम सब अपने पापों के सारे ॥१५।

कर्ण, भीष्म, गुरु, सोमदत्ति, तुम दण्ड्य अघी थे पाँचों,
धर्म-युद्ध से सुकर नहीं था इनका किन्तु पराजय।
करते थे अन्याय छीन तुम इन्द्रप्रस्थ भी छल से,
धर्म-राज्य के संस्थापन हित किया तुम्हारा है क्षय" ॥१६॥

दुर्योधन को देख द्रौणि ने कहा हाथ मल प्रकुपित,
पंचालों को सब जाता मैं अब यम-धाम पठाने।
कृप से कह दुर्योधन ने अभिषिक्त किया तब उसको,
सेनापति बन चला क्रूर-निश्चय वह भौंहे ताने ॥१७॥

हो अद्वार-प्रविष्ट शिविर में सुप्त पाण्डवों के वह
रजनी में प्रच्छन्न लगा पाञ्चालों का वध करने।
अनुगति पा कृप, कृतवर्मा की श्रान्त, सुप्त भट उससे,
पाशिक से पशु-तुल्य लगे मारे जाने, घिर मरने ॥१८॥

धृष्टद्युम्न को शयित दबोचा, गला दबाकर मारा,
वही शिखण्डी, युधामन्यु दोनों ने दुर्गति पायी।
उसी भाँति यमपुरी पठाया गया उत्तमौजा भी,
यही द्रौपदेयों के भी वध में अनीति अपनायी ॥१९॥

आग गुल्म में लगा जलाया जीवित घेर भटों को,
जो भागे कृतवर्मा, कृप ने उनको काट गिराया।
शयितों का सामूहिक वध कर तीन आततायी ये
थे कृतकृत्य निशाचरत्व भी इनको देख लजाया ॥२०॥

आम्बिकेय ने पूछा संजय से सारी घटना सुन—
"अश्वत्थामा ने न दिखाया क्यों नृशंस यह विक्रम,
पहले ही मेरे आत्मज की विजय चाह दृढ़ निश्चय
वध में इस विधि से जब सबके था वह ऐसा ही क्षम'? ॥२१॥

संजय बोले—"थे न शिविर में केशव पाण्डव, सात्यकि,
इसीलिए अश्वत्थामा को ऐसा हुआ कुसाहस।
गुडाकेश के रहते होता कौन प्रविष्ट शिविर में?
सुप्तों पर ही तो अशंक यों चल पाया उसका बस? ॥२२॥

अश्वत्थामा ने दुर्योधन से जा कहा मुदित हो—
"जीवित हों यदि महाराज तो अवहित हो यह लें सुन।
सात्मज धृष्टद्युम्न मत्स्य, पंचाल, द्रौपदी-सुत सब,
अरि सैनिक सारे मारे जा चुके सुप्त हो चुनचुन ॥२३॥

दल में हैं अवशिष्ट आपके हमी तीन मरने से,
कृप, कृतवर्मा, मैं, पहले यह सोच बहुत हम रोये।
अब पांचों पाण्डव, केशव, सात्यकि ही सात उधर भी
जीवित हैं; मिल सके क्यों कि वे नहीं शिविर में सोये ॥२४॥

अन्तिम घड़ियां गिनता सब खो पीड़ा में व्याकुल भी
दुर्योधन उत्फुल्ल हुआ, ज्यों दीपक बुझता कोई।
बोला—"मेरा द्रोण, भीष्म या कर्ण किसी ने इतना,
प्रिय न किया था अहा!" दृष्टि फिर चिर निद्रा में सोई ॥२५॥

घृष्टद्युम्न के सारथि से सुन यह दुष्काण्ड युधिष्ठिर,
गंवा चेतना गिरे व्यथित, सात्यकि ने किन्तु सम्हाला।
पा चैतन्य पुनः बोले—हा! शत्रु हमारे हारे,
पर न पराजय से उनकी मिल सकी हमें जयमाला ॥२६॥

जय न विजय यह, जिस में सारे स्वजन जा चुके मारे,
संपद् भी वह विपद् मर्मभिद हो जिससे पछतावा।
जिनके हित के हेतु वन्धु-वध से हा! यह जय अरजी;
रहे न वे ही, मुझ से विधि ने ऐसा किया छलावा! ॥२७॥

द्रोण-भीष्म-राधेय-जलधि तर तीर वीर जो उतरे,
अनवधान से डूबे वे अश्वत्थामा-कुल्या में।
सुतों भाइयों तथा पिता को साथ देख हत, पातित,
सती द्रौपदी पीड़ा-मूच्छित लोटेगी वसुधा में" ॥२८॥

भेज नकुल को उपप्लव्य से कृष्णा गई बुलायी,
ज्यों उसने भू-शयित सुतों को पांचो देखा संमुख।
लगी कांपने पास युधिष्ठिर के जा त्यों कदली सी;
तमो-ग्रस्त हो गिरी, अबल सहती आयी दुख पर दुख ॥२९॥

उठी भीम का पा अवलम्बन बोली—"अश्वत्थामा को
मार, काट मणि सहज शीर्ष की मुझे दिखाएँ लाकर।
पापी फल पाये अघ का अन्यथा प्राण तज दूँगी,
लौटूँगी हास्तिनपुर पूरा अपना वैर चुका कर ॥३०॥

भर अमर्ष में भीम हुए प्रस्थित सुन बात प्रिया की,
उनके पीछे गये शीघ्र माधव, बीभत्स, युधिष्ठिर।
अश्वत्थामा को ललकारा निकट भीमने जाकर,
वह अधीर हो उठा तीर पर गंगा के इन से घिर ॥३१॥

भीत कुपित 'पाण्डव विनष्ट हों" कर संकल्प निठुर यह
चला दिया ब्रह्मास्त्र प्रकम्पित जिस से हुआ धरातल।
शमन-हेतु उसके छोड़ा ब्रह्मास्त्र अन्य अर्जुन ने,
बोल "रहें, गुरुसुत मैं, भाई भी मेरे सब सकुशल" ॥३२॥

आये नारद और व्यास तब दोनों को समझाने,
दोनों अस्त्रों से पीड़ित था क्योंकि सकल जगतीतल।
बात मान उनकी अर्जुन ने अस्त्र किया निज संहृत
विफल हुआ पर लौटाने में द्रौणि अस्त्र निज अकुशल ॥३३॥

हुआ अस्त्र से उसके पाण्डव-गर्भ उत्तरा का हत,
हरि-महिमा से वही पुनर्जीवित पर हुआ परिक्षित।
दिया द्रौणि को, प्राणदान मस्तक-मणि ले अर्जुन ने,
और सुप्त-वध-फल हरि ने वन-जीवन, रुजा जुगुप्सित ॥३४॥

प्राप्त भीम से कर मणि गुरु सुत की पाञ्चाली बोलीं—
गुरु-सुत, गुरुसम ही अवध्य, प्रतिशोध लिया पूरा कर।
अब शोभित यह रहे ज्येष्ठ पाण्डव के ही मस्तक पर,
हों अजातरिपु धारण कर वह भारतेश भास्वरतर" ॥३५॥

आम्बिकेय को दुखी देख सुतवध से संजय बोले—
"सुना आपने कथन न सुहृदों का, अब शोक वृथा यह,
पार्थानल को स्वयं आपने ही सह-तनय जलाया,
डाल लोभ-घृत, जले शलभ-सुत लौ में जिसकी दुःसह ॥३६॥

दुर्योधन को मिले सचिव सब खल, राधेय दुरात्मा,
दुष्ट शकुनि, गर्वान्ध शल्य, जड़ चित्रसेन, दुःशासन।
नहीं कभी माना उसने गान्धारी, भीष्म, विदुर का,
अथवा भारद्वाज, व्यास, कृप, नारद का अनुशासन ॥३७॥

ज्येष्ठ तात भी हो न संतुलन रखा आपने घर में,
किया भ्रातृजों और आत्मजों में ममतावश अन्तर"।
विदुर और केशव दोनों ने पुनः यही समझाया—
"बीते का अनुताप तजें, अब रहें धैर्य धारण कर" ॥३८॥

कुरुपति ने मिल धर्मराज से स्वयं भीम को ढूँढ़ा,
रखी भीम की लोह-मूर्त्ति हरि ने झट संमुख लाकर।
तोड़ उसे दृढ़ आलिङ्गन से ही धृतराष्ट्र अतिकुपित,
भग्नवक्ष, कर रक्तवमन, रुधिरोक्षित गिरे धरा पर। ३९॥

गावल्गणि ने इसे अशोभन बता बहुत समझाया,
बीतमन्यु तब नृप रो, कह हा! भीम" लगे पछताने।
कहा कृष्ण ने—"दुर्योधन-कृत लोह भीम था वह तो,
भाँप आप की कुमति भीम को मैंने दिया न जाने ॥४०॥

कर अपराध स्वयं क्यों होते क्रुद्ध भीम पर राजन्!
कहा न मेरा, द्रोण, भीष्म, क्षत्ता, संजय का माना।
बीच कौरवों से पाण्डव थे, स्पष्ट दृष्टि में सब की,
पुत्र-मोह वश किन्तु आप ने उन्हें नहीं पहचाना ॥४१॥

मत्सरवश दुर्योधन ने कृष्णा को किया विमानित
बुला सभा में, इसी वैर से उसे भीम ने मारा।
अत्याचार बिचारें अपने और सुतों के उन पर,
अनुज-सुतों ने कभी आप का क्या कुछ कहीं बिगाड़ा?" ॥४२॥

संजय, माधव, विदुर, व्यास ने जब नृप को समझाया,
बोले वे—'मैं हुआ धर्म से च्युत ममत्व से उत्कट।
शापोद्यत गान्धारी को भी दिया व्यास ने समझा,
क्षमा पाण्डवों ने माँगी तब टला विकट यह संकट ॥४३॥

किन्तु समर में इस वीरों का हनन देख लक्षाधिक,
दुर्योधन, धृतराष्ट्र और गान्धारी की सुन पीड़ा।
हुए धर्म-सुत विजय प्राप्त कर भी अनुताप-परायण,
हुई प्रजा पर स्वजनवधाकुल शासन में अब व्रीड़ा ॥४४॥

कहा विरत गार्हस्थ्य, राज्य मे हो अनुजों से नतमुख —
"कुरुकुल को निर्वंश बना हमने सुख है क्या पाया ?
धार्त्तराष्ट्र सुखदुख से पर; कुरुकुलरिपु हुए मुदित सब,
क्षात्रधर्म, पौरुष, अमर्ष ने हाय! हमें बहकाया। ४५॥

पा त्रिभुवन का भी न राज्य मैं सुखी कभी हो सकता,
लोभ, मोह, अभिमान, दम्भ का मिला तिक्त यह जय फल।
आमिषार्थ लड़ श्येन-श्वान-सम जय से लोग सुखी हों,
मार सगों को लब्ध मुझे तो दिखता सकल वसु गरल।४६॥

युवक हुए कुल-कलह-वह्नि में जल जो भस्म हमारे,
माता, पिता, वधू की उनकी मिली धूल में आशा।
कुरु पञ्चाल अमर्ष-विवश कट मरे परस्पर लड़ सब,
पूर्ण हुई कौरवों पाण्डवों की या क्या अभिलाषा ?॥४७॥

द्वेष-दग्ध दुर्योधन ने हम से जो बात कही थी,
सन्धि-लिप्सु माधव से वह था सुजन कौन सकता कह ?
मरा राष्ट्र को कर विपन्न तज अन्ध वृद्ध पितरों को,
उसे बना राजा पितृव्य अब रहे दुःख सह दुर्वह॥४८।

मुझे राष्ट्र यह सौंप न पकड़े रहे इसे आजीवन,
रखा नाम धृतराष्ट्र समझ कुलगुरु ने इनका समुचित।
दुर्योधन शठ मरा, शाप दें या रोएँ दो बूढ़े,
रह स्वधर्म में भी पीड़ित हम शङ्काओं से अनुचित।४९॥

श्रुति कहती है सत्य; परिग्रह-रत न धर्म-रत रहता,
देशनाश, युवजन-वध मैंने किया परिग्रह-वशगत।
मैं जाऊँगा त्याग राज्य, सुख, सकल परिग्रह अब वन,
तुम्हीं लोग वसुधा पर शासन करो धर्म-रत अविरत ॥५०॥

कहीं बिताऊँगा दिन रहता तरुतल, कुञ्ज, दरी में,
ऋषि-मुनियों की संगति का आमोद स्वान्त में भरता।
खग, मृग के कलरव सुनता, सौरभ कुसुमों के लेता,
गिरियों, झरनों को विलोकता अशन फूल फल करता" ॥५१॥

कहा धनंजय ने—"अचरज है विरल पराक्रम से निज,
मारे अपहर्त्ता रिपु, अपहृत राज्य-श्री लौटाई।
यदि वन ही जाना था, तो क्यों किया, कराया नर वध ?
यह विक्लवता है अबुद्धिता और क्लीवता भाई ॥५२॥

लोग कहेंगे क्या सोचें, यदि राज्य आप त्यागेंगे ?
जन्म राज-कुल में ले जय सारी वसुन्धरा का कर।
अर्थ-मूल है धर्म, अर्थ तज जायँ धर्म-धन यदि वन
राज्य रहेगा सदा पापियों का तब तो जनता पर ? ॥५३॥

अनय न असुरों के विनाश में देवों ने अपनाया ?
आदित्यों का ज्ञाति-द्रोह था क्या न दैत्य-दानव-वध ?
हो जाता है कुछ अनर्थ भी अवश अर्थ-संचय में
सभी अभावों का धरती के धन ही किन्तु महौषध ॥५४॥

अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, दिलीप, नृगादि नृपों ने,
विश्व-विजय से प्राप्त द्रविण का ऋतु में किया विसर्जन ।
सर्वमेध ही करु शङ्कर ने भी सर्वस्व दिया था,
उचित पात्र में त्याग वित्त का अर्जित, नहीं अनर्जन ॥५५॥

निर्वेदाप्त अजात-श्मश्रु कुछ गए विप्रबटु वन में,
त्याग पिता, माता, सहजों को अविवाहित रह, तज घर ।
कहा इन्द्र ने उन्हें "कर्म से सदा अकर्म अवर है,
यज्ञ-शिष्ट ही सुधा, सुधैषी भिक्षैषी से शुभतर" ॥५६॥

कहा भीम ने—"मन्त्रपाठ ज्यों अर्थ-हीन निन्दित है,
राज-धर्म भी अर्थ-हीन त्यों गया बताया निष्फल ।
उचित न शासन में कदापि ऐसी करुणा, भावुकता,
जो स्वराज्य के परिपन्थी हन्तव्य सकल वे हैं खल । ५७॥

क्षात्र-धर्म-साधक है केवल अस्त्र, अस्त्र अवलोचित,
भक्ष्य-लक्ष्य-हित जीवन क्यों डाला संकट में भीषण ?
महायज्ञ-पञ्चक वन में रह कैसे कौन करेगा ?
पेट पोस लेना चुन कण, तृण, अलसवृत्ति, पशु-जीवन" । ५८॥

बोले नकुल—"सुविज्ञ आप है, मैं क्या समझाऊँगा,
सभी आश्रमों में ऊँचा गार्हस्थ्य हुआ है घोषित,
एक ओर हैं, तीनों आश्रम एक ओर केवल यह,
सभी वर्ण, आश्रम, प्राणी इस से ही होते पोषित ॥ ५९॥

दुःशासन, निःशासन दोनों जनता-हित अनुचित ,हैं;
दस्यु अराजक जनता का करते हैं निर्भय लुण्ठन।
भीरु, धर्म दम्भी ही जन, निर्वेद दया से करते,
अनुत्साह, आलस्य, अधृति लघुता का निज अवगुण्ठन" ॥६०॥

तब बोले सहदेव—"त्याग से बाह्य नहीं कुछ होता,
असंतुष्ट ही तृषा रह गई यदि अन्तर्मानस की।
त्र्यक्षर "न मम", विपिन, कन्दर, अपवर्ग, ब्रह्म शाश्वत-सम
द्व्यक्षर मम' की मनोवृत्ति गृह-कारा वैखानस की ॥६१॥

छिड़ा द्वन्द्व सबके अन्तर में रहता इन दोनों का
सुखी वही 'मम' विजित 'न मम' से जिस का रहता अविरत
शम दम का आधार न वन, क्षत्रियता अवनि-अवन है,
धर्मराज भी है स्वकर्मरत सदा राज-धर्म-निरत" ॥६२॥

देख युधिष्ठिर को तब भी चुप कहा याज्ञसेनी ने—
"क्यों अनुजों से नहीं वीर! करते अपने संभाषण?
सदा दुःख की घड़ियों में प्रोत्साहन देते आये,
तोड़ रहे मन क्यों उनका तज स्वयं राज-सिंहासन? ॥६३॥

सर्व-भूत-मैत्री, करुणा है धर्म ब्राह्मणों का ही,
क्षत्र-धर्म सत्-पालन, खल-दण्डन, खलता-प्रक्षालन।
विक्लव गृहपति भी न शक्त होता, क्षितिपति क्या होगा?
दण्ड विना किस भाँति करेगा नृप शासन-संचालन? ॥६४॥

प्रजा शान्ति सुख से रह पाती कभी न उस नरपति की,
सदा अनुग्रह जो करता' निग्रह न कभी कर पाता।
जिससे हो संतुलित दान-कर, क्षमा-क्रोध, पालन-क्षय
बना उसी को है निज त्राता राष्ट्र नहीं पछताता ।।६५।।

कहा कभी सर्वज्ञ सास ने "अनृत कदापि न बोलो,
आजीवन पाञ्चालि ! रखेगा सुख से तुम्हें युधिष्ठिर" ।
देख रही, हृत - धैर्य, मोह से आप हुए चिर व्याकुल,
तज कातर्य, प्रजाओं, अनुजों को पालें कर मन स्थिर ।।६६।।

किया न मन को निष्कषाय, काषाय कर लिया धारण,
संग न मन का तजा, तजा पर पत्नी, सुत, परिजन, घर।
तजा परिग्रह, घूम-घूम याचन पर किया अनागत,
उस से कहीं बड़ा, जो है निष्काम प्रजा-पालन-पर ।।६७।

पर न हुए आश्वस्त युधिष्ठिर, साश्रु दीन वे बोले—
"द्रौपदेय, सौभद्र, विराट, द्रुपद हो चुके ससुत हत,
धृष्टकेतु, वृषसेन वीरगति सब स्वजनों ने पाई।
मेरे कारण; ज्ञातिघात कर और रहूँ मैं सुख-रत ? ।।६८।।

खेल गोद में बैठ पितामह की जिस हुआ बड़ा मैं;
राज्य लोभ से उन्हें शिखण्डी द्वारा मरवा डाला।
गुरु ने कर विश्वास साक्ष्य माँगा मुझसे सुत वध का,
मुझ पापी ने किया झूठ कह कर अपना मुँह काला ।।६९।।

किये पितामह-वध; गुरु-वध मैंने महान पातक दो,
नहीं जानता नरक कौन सा पाऊँगा मैं पापी।
राज्य-लोभ से कर्ण ज्येष्ठ भ्राता का हनन कराया,
जन-विनाश का अयश मुझे है मिला त्रिलोकी-व्यापी ॥७०॥

निहत हुआ अभिमन्यु व्यूह में प्रहित लोभ-वश मुझ से,
अपराधी मैं कृष्ण, सुभद्रा, अर्जुन के हूँ संमुख।
जिस कृष्णा का परिभव-दुख हरने को रण यह ठाना,
पुत्र-शोक ही उसे दिया, दूँगा अब कौन उसे सुख? ॥७१॥

गुरु-घाती, भ्रूणघ्न, ज्ञाति-वध-नर-वध-दूषित तन यह,
बैठ सुखा डालूँगा मैं आमरण यहीं पवनाशन"।
समझाने पर भी न व्यास के धर्म-पुत्र जब डोले,
अर्जुन बोले—"कृष्ण! आप अब स्वयं करें आश्वासन" ॥७२॥

कहा कृष्ण ने—"पुरुषसिंह! यह शोक, विलाप वृथा है,
लौट स्वप्न-धन-सदृश पुनः आयेंगे नहीं स्वजन मृत।
संमुख रण में प्राण सबों ने तज क्षत्रिय-गति पाई,
नहीं आप का आत्म-शोष भी होगा उनका शुभकृत् ॥७३॥

भरत, मरुत्त, भगीरथ, पृथु, शिवि, रन्तिदेव, मान्धाता,
अम्बरीष शशविन्दु, ययाति, दिलीप, सुहोत्र, सगर, गय।
राम, बृहद्रथ आदि भी हुए स्वर्गत क्षत्रिय-भूषण,
अमर न कोई हुआ, निचय में सभी लगा रहता क्षय ॥७४।

द्रोण, भीष्म, राधेय, आदि ने दिया साथ पापी का
अतः उन्हें मरना ही था, होता हत, विजित असत् दल।
अन्यायी का नाश अनय से है न पाप कहलाता,
किया वृत्र के वध में देवोत्तम ने स्वयं अतः छल ॥७५॥

द्रौपदेय, सौभद्र, मत्स्यपति, द्रुपद आदि शूरों की,
न्याय, सत्य की रक्षा में बलि स्पर्धनीय है अनुपम।
रुजा, जरा से नहीं; मरण का वरण शस्त्र से करते,
समर-भूमि में धर्म-हेतु सच्चे क्षत्रिय वीरोत्तम ॥७६॥

स्वयं तरे वे और कुलों को भी है अपने तारा,
मृत्यु कदापि नहीं अजातरिपु शोचनीय है इनकी।
क्षत्रिय-हित प्रायोपवेश, कातर्य, नपुंसकता, अघ,
धन्य धरा में वे, जन-हित है जीवन-यात्रा जिनकी" ॥७७॥

बोले धर्म-तनय—"स्त्री-वध-पातक से मैं अब शङ्कित,
क्योंकि तजेंगी प्राण सभी पत्नियां और माताएँ।
पति-सुत-हित उनका विलाप, क्रन्दन सुन मन रोता है,
बैठ शवों के पास बहातीं अश्रु कोटि महिलाएँ ॥७८॥

आखों के आगे मेरी दिखते शव-कोटि बिछे नित,
और गृध्र, गोमायु निकट आ आमिष-हित मँड़राते।
रत्न-स्वर्ण-कौशेय-मलय-वृत मदन-मान-हर युव-तन,
रक्त-लिप्त, स्थण्डिल पर बिखरे पीड़ा से चिल्लाते ॥७९॥

कानों में चीत्कार गूँजता रहता अनिश भटों का,
आँखों में रहता भीषण बीभत्स दृश्य नित छाया।
पूछ रही लगता सूनो प्रत्येक दिशा, जनपद है,
धर्म-युद्ध लड़ धर्म-पुत्र क्या तुमने धर्म कमाया? ॥८०॥

कहा व्यास ने पुन: विजेता का विलाप सुन तत्क्षण—
"चिन्तन को यह दिशा तुम्हारी राजन् नहीं उचित है।
क्षत्रिय धर्म कठोर विदित है, व्यर्थ विवाद तुम्हारा।
असुर वृत्तियों का दण्डन जन जन का मनोरुचित है। ८१॥

भूमण्डल की सारी लक्ष्मी के लोभी, आतुर-रुचि,
विधि-विधान से स्वयं काल के गये गाल में पड़ कर।
अत: निहन्ता तुम में से कोई पाण्डव न किसी का,
धर्म-शत्रु हत धर्मराज से हुए परस्पर लड़ मर। ८२॥

दुष्कर्मों को क्यों न सोचते तुम उन निज रिपुओं के?
क्रूर आचरण पड़ा तुम्हें भी करना जिनके कारण।
सत्य यही है, काल-वश्य ये ही अजातरिपु तुम को,
बना स्वयं रिपु जले शलभ से सुन कोई न निवारण ॥८३॥

हुआ राजलक्ष्मी-निमित्त ही देवासुर-संगर भी,
धरा रुधिर से हत असुरों के जिसमें डूबी सारी।
शालावृक वेदज्ञ विप्र भी निहत हुए थे उस में,
क्योंकि दानवों के थे वे भी हुए समर-सहकारी ॥८४॥

मर्यादा भञ्जक, अधर्मरत, दण्ड्य सदा होता है,
छल-बल से भी हुआ सुरों से ज्यों जित, हत, दानव दल।
हनन एक का कुलहित, कुल का ग्राम-हेतु; जन-पद-हित
नाश ग्राम का, विश्व-हेतु जनपद-विनाश भी मङ्गल ॥८५॥

सार्थकता है स्पष्ट प्रलय की भार धरा का हरना,
हनन पुण्य है लोक-पीड़कों का स्वार्थान्ध-बधिर, खल।
परशुराम ने स्वयं किया इक्कीस बार क्षत्रिय-क्षय;
नूतन-कृषि के हेतु पुराना काटा जाता जङ्गल ॥८६॥

धर्म अधर्म, अधर्म धर्म भी देश-कालवश होता,
मुख्य वस्तु है कार्य न, पर उसका संकल्प, प्रयोजन।
देव-सरणि का ही तुमने अनुसरण किया श्रुतिविद् हो,
नरक तुम्हारे जैसे जा सकते न कभी नर-भूषण ॥८७॥

दैव-संपदा-युत तुम से कल्मष न हुआ है कोई,
गया कराया समर खलों से तुम्हे खोदकर बरबस।
है उत्तरदायित्व किसी पर नहीं किसी के वध का,
स्वयं धरो, अनुजों को भी इन म्लान बँधाओ ढाढस ॥८८॥

प्रायश्चित्त किया सुरपति ने क्रतुशत से वध-अघ का,
किये कलुष को अवश सभी आन्तर अनुताप मिटाता।
तुम लज्जित, अनुशयित भाँति इस हो निष्पाप चुके अब,
अश्वमेध कर बनो पूत सद्धर्म-साधु-जन-त्राता ॥८९॥

भूप मरे जो इस संगर में उनके रिक्त पदों पर,
उनके सुतों, सुताओं या वनिताओं को बैठाओ।
भूल काल-क्रम से जाते सब शोक कार्य-व्यापृत जन,
घूम घूम सान्त्वना सबों को देकर धैर्य बंधाओ ॥९०॥

स्वयं शोक-हत-बुद्धि विप्र, भाई, हतशिष्ट नृपति गण,
कुरु-जाङ्गल की प्रजा तुम्हारा जोह रहे मुँह हैं सब।
उनकी रुचि, आदेश हमारा, सब सुहृदों का आग्रह,
अनुनय कृष्णा का मानो, होओ प्रविष्ट पुर में अब" ॥९१॥

दूर हुआ कश्मल, निर्मल मति हुई, युधिष्ठिर की तब,
मिली शान्ति श्रीकृष्ण, व्यास दोनों के सुन वचनामृत।
परिजन-सहित किया प्रवेश राज्यार्थ हस्तिनापुर में
प्रजावर्ग से हो अशेष सोत्सव जय-घोष-समादृत ॥९२॥

किया कृष्ण ने पाञ्चजन्य-अभिषिक्त युधिष्ठिर को तब,
बजे पणव, आनक; पौरों ने किया प्रीत अभिनन्दन।
बँटे सबों में विविध कर्म, पद, सौध; हुए सब प्रमुदित,
हुई सविधि अन्त्येष्टि सबों की, राज-कोष से ले धन ॥९३॥

सात्यकि और सभी अनुजों को मधुर वचन से सान्त्वित
धौम्य, युयुत्सु, सुधर्मा, संजय, कृप सबको सत्कृत कर।
सौंप राज्य चरणों में गान्धारी, धृतराष्ट्र, विदुर के
कहा—'रहें सब ज्येष्ठ तात की ही आज्ञा सिर पर धर" ॥९४॥

धर्मराज माधव से बोले—"पैतृक राज्य दिलाया,
मुझे आपने प्रकट विरल कर नीति, बुद्धि, बल, विक्रय।
स्तुति कितनी मैं करूँ, आप का ऋणी सदैव रहूँगा;
आप विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विष्णु, जिष्णु-पुरुषोत्तम" ॥६५॥

देख कृष्ण को चुप बोले—"प्रिय ! कहाँ आप का मन है ?
बोले केशव—"भीष्म ध्यान में है मुमूर्षु मेरे रत।
भू होगी श्री-हीन कुहू सी स्वर्ग-वास से उन के,
पूछ मिटालें उन से चल सब संशय अभी मनोगत ॥६६॥

कहा युधिष्ठिर ने—"अच्छा है, चले साथ हम दोनों,
सात्यकि से कह हरि ने दारुक से तब रथ हँकवाया।
ओघवती के तट पर आ श्री कृष्ण, युधिष्ठिर, सात्यकि,
अर्जुन, भीम आदि ने गंगासुत को शीश नवाया ॥६७॥

कहा कृष्ण ने—"भीष्म ! युधिष्ठिर जन-विनाश से लज्जित,
ज्ञाति-हनन से व्यथित आप के संमुख जाते डरते।
उन्हें ज्ञान दें आप दीर्घ अनुभव से अपने अर्जित,
मिटा दैन्य, कर उत्साहित संशय, विषाद, भय हरते" ॥६८॥

बोले भीष्म—"न गीता-गाता से बढ़ वक्ता कोई,
किसी विषय में त्रिभुवन में, कुछ क्यों न आप ही कहते।
बिंधा शरों से गरल-अनल-सम विकल, भ्रान्त-मति हूँ मैं,
और न मेरा कथन शोभता स्वयं आप के रहते" ॥६९॥

कहा कृष्ण ने—"अब न आप को व्यथा, जलन व्यापेगी,
शान्त बुद्धि होगी, यथावसर होंगे स्फुरित विषय भी।
ब्रह्मचर्य-पितृभक्ति-शक्ति से अतुल आप आजीवन,
राज-धर्म के अनुशासन से पाएँ यश अक्षय भी" ॥१००॥

कहा भीष्म ने—"अस्तु युधिष्ठिर, धर्मात्मा, राजर्षभ,
जो पूछें मैं कृपा आप की हो पा दूँगा उत्तर।
इन में शम, दम, तेज, ओज, यश, क्षमा, सत्य, धृति, संयम,
ज्ञान, दान, तप, शौर्य, दया, दाक्षिण्य, शान्ति सुयशस्कर ॥१०१॥

जो न सनातन धर्म-सेतु मर्यादा-पथ पर रहता,
राग-द्वेष-वश, दोषी वह, गुरु हो वा नर साधारण।
वध उसका ससहाय धर्म ही कहलाता क्षितिपति का
क्षत्रियता है रणाहूत हो करना वैरि-निवारण ॥१०२॥

संशय, लज्जा या भय में तुम व्यर्थ युधिष्ठिर डूबे,
क्षमा धर्म ब्राह्मण का, क्षत्रिय का है पापि-निपातन।
पिता, पितामह, भ्राता, गुरु, संबन्धी, बन्धु भले हो,
धर्म किसी मिथ्या-प्रवृत्त का रण में वध या घातन" ॥१०३॥

तब होकर आश्वस्त युधिष्ठिर ने संमुख जा सविनय
पूछा—"तात! बताते हैं सब, राजधर्म है गुरुतम।
है त्रिवर्ग का जनक, व्यवस्था का जगती की साधक,
पर लगता है मुझे भार यह अगम कर्म अति निर्मम ॥१०४॥

कशा अश्व के हेतु, नाग के हेतु भाँति जिस अंकुश,
उसी भाँति नृप-नय होता मानव का मार्ग-नियामक।
क्या कैसे मैं कर पाऊँगा उत्पथ-प्रजा-नियन्त्रण,
यदि मेरी ही दृष्टि हो गई राजनीति में भ्रामक ?" ॥१०५॥

कहा भीष्म ने—'नमस्कार है धर्म, कृष्ण, विप्रों को,
सुनो युधिष्ठिर ! राज-धर्म क्या है मैं तुम्हें बताता।
शासक का है काम्य लोक-हित-साधन सब विधि अविरत,
देव-विप्र-पूजन हिंसा के अघ से उसे बचाता ॥१०६॥

नहीं बैठ जाना है सालस कर अवलम्ब नियति का,
हैं त्रिरत्न उत्थान, सत्य, पौरुष शासन के साधक।
आर्जव है केन्द्रीय नीति, तीक्ष्णता जनोद्वेजक है,
बन जाती मृदुता की भी अति किन्तु भूप-हित बाधक ॥१०७॥

मर्यादा-रक्षण होता है राज-धर्म आवश्यक,
दम्य शाठ्य से ही शठता, विग्रह से ही विग्रह भी।
गुरु-जन-वध है पाप; शस्त्र कर वेदान्तग भी धारण,
पर करता न्यायावरोध यदि, तो वधार्ह है वह भी ॥१०८॥

स्मरण किन्तु रखना है गिरि वन, मरु, जल, थल, नर इन छह,
दुर्गों में नर-दुर्ग सदा घोषित दृढतम, दुस्तर तम।
चतुर्वर्ण पर दया, सत्यपरता, जनता का रञ्जन,
इन तीनों से युक्त भूप होता स्थिर-शासन में क्षम ॥१०९॥

ज्यों अन्तर्वत्नी तज अपनी सुख सुविधा-लिप्साएं,
सदा गर्भ के क्षेम-योग में ही रहती है अवहित।
उसी भाँति नृप को भी रहना पड़ता धर्म-परायण,
अपना प्रिय तज जन हित करना पड़ता जीवन अर्पित ।।११०।।

किन्तु धीर, गम्भीर बना रहना है नित शासक को,
अतिसमीपता शासित को ढीठा, मुँह-लगा बनाती।
पक्षपात करते वे ले उत्कोच, त्याग लज्जा, भय,
अनुशासन में क्रमिक शिथिलता है इस से आ जाती। १११।।

कपट-नम्र बन धूर्त्त, स्वार्थ-रत घेरे रहते नृप को,
ईश्वर का अवतार उसे कह मति को उसके फेरे।
कहते ये जन-जन में मेरे नृपति क्रीडनक कर के,
रहते उसे नचाते जैसे अहि को कुशल सँपेरे ।।११२।।

कहा देवगुरु ने है सच, नृप, राष्ट्र, कोष, सचिव, सुहृद्
दुर्ग और सेना ये सातो अङ्ग राज्य के है तन।
सुहृद्, बन्धु, गुरु भी वधार्ह, यदि उन्हे हानि पहुँचाएँ,
किया सगर ने सुत असमञ्जस का भी पुर-निर्वासन ।।२१३।।

सन्धि, समाश्रय, द्वैध, यान, विग्रह, आसन षड्गुण में,
रहे निपुण, सोया न रहे कर अतिविश्वास किसी पर।
उच्छृङ्खलता, संकर आने दे न कभी जनता में
चतुर्वर्ण के रहे धर्म के पालन में नित तत्पर ।।११४।।

रखे राज-सेवा में केवल सुचरित, बुध, आप्तों को,
शत्रु-राज्य की गति-विधि जाने रख सर्वत्र सदा चर।
सिंहासन, आज्ञा-प्रदान दो ही केवल भेदक हो,
सर्व-सुलभ ही रहे सदा नृप के भी जीवन का स्तर ॥११५॥

अविकत्थन, निर्व्यसन, साधु-प्रिय, कर्मठ, वीर, जितेन्द्रिय,
नृप का जाता राज्य प्रजा के लिए पिता का घर बन।
जहाँ न कोई किसी अन्य का शोषक, त्रासक, वञ्चक,
रक्षित रह सर्वत्र घूमते सदा अशङ्कित सब जन ॥११६॥

प्रथम चेय है सात्त्विक शासक, तभी जीविका, भार्या,
दुःशासन, दुर्योधन से धन दार न रहने रक्षित।
यदि शासक रहता है निर्बल, भीरु, आलसी, भोगी,
राजपुरुष बन जाते भक्षक, जनता होती भक्षित ॥११७॥

रक्षा ही प्रत्येक नागरिक की नृप-धर्म प्रथम है,
परम भाग्य कर्त्तव्य-मार्ग में यदि हो प्राण-विसर्जन।
महातन्त्र है राज्य पुङ्गवापेक्ष भार यह दुर्वह,
क्षण-क्षण है उत्साह मृग्य, है अनुत्साह, भय वर्जित ॥११८॥

अभय, लौह-संकल्प, कूट-मति, सरल-हृदय, स्वार्थ-रहित,
राजा होता दस्युशमन जनपालन में पृथु सा क्षम।
दुर्जन-दमन, सुजन-पालन है परम धर्म नरपति का,
विश्व-शान्ति है, इस पर निर्भर अतः नृपति वासव-सम ॥११९॥

कुशल समझते दुर्जन यद्यपि अपना श्लथ शासन में,
जैसे रजनीचर को लगती है रजनी ही हितकर।
आँखें खुलती सबल चोर जब अबल चोर को, अथवा,
अपहृत करते प्रबल एक को मिल अनेक लघु तस्कर ॥१२०॥

पापी भी न सुखी रह पाते अतः अराजक पुर में,
निर्बल बनते दास, स्त्रियाँ भी उनकी होती अपहृत।
सबल प्रबलता से न मत्स्यवत् हो हत, ग्रस्त परस्पर,
अतः किया अधिकार और कर्तव्य संघ ने स्वीकृत ॥१२१॥

पशु-पालन, वाणिज्य और कृषि नष्ट कुशासन से हो,
विद्या-दान, ग्रहण हो न सके विधिवत् कहीं तपोमय;
फलतः हो दुर्भिक्ष अशिक्षा का प्रसार जगती में,
फैल वर्ण-संकर समाज में जाये, बढ़े कलह-भय ॥१२२॥

जन समूह को अतः चाहिये एक जितेन्द्रिय शासक,
दुरुपयोग राष्ट्रीय वित्त का रहे दण्ड्य घोषित नित।
धार्मिक, बुध, निर्लोभ, नीतिपटु, स्वार्थ-शून्य हो मन्त्री,
सुकृत भूमि पर कृतयुग लाता, कलि ला देता दुष्कृत ॥१२३॥

उत्तम शासक अग्नि, मृत्यु, यम, रवि, कुबेर-सम होता,
दुर्जन-निग्रह, सुजन-अनुग्रह में प्रभु वह रहता बन।
पुरजन भी परिजन से उसके रहते निर्भय, प्रमुदित,
करते उसके स्वजन भी न विधि का कदापि उल्लङ्घन ॥१२४॥

आत्म-विजय है उत्तम शासक का अनिवार्य प्रथम गुण,
आत्म-जयी ही विजय खलों रिपुओं पर भी पा सकता।
शत्रु मित्र राष्ट्रों पर ही चर नहीं, सगों पर भी हों,
वे न परस्पर भी जानें, हो दृढ़ रहस्य-पालकता ॥१२२॥

साम, सन्धि अपनाये भर सक, करे न अरि से भी रण,
धर्म, भीरु, विधि-विज्ञ वृद्ध को न्यायाधीश बनाये।
किया प्रजा-पालन जिसने धर्मानुसार आजीवन,
पाता वह अमरत्व भले वह कर न यज्ञ, तप पाये ॥१२६॥

नहीं कुनृप होता कुसमयवश, किन्तु कुनृपवश कुसमय,
यथायोग्य सब को स्वधर्म में सुनृप व्यवस्थित करता।
क्षेम-योग जनता का करता, उचित निग्रहानुग्रह,
दृढ शासन में पौर नियमरत कहीं न कोई डरता ॥१२७॥

कृतयुग-आनेता नेता का उस यश हो जाता ध्रुव,
ब्रह्मचर्य, तप से जो नृप सुख-शान्ति धरा पर लाता।
हों विधायिका, न्याय-कार्य-पालिका एकमत जनहित,
चिन्तन कार्यान्वयन-सदृश, तब शासन शुभ कहलाता ॥१२८॥

नारी, द्विज, गौ, कृषक, श्रमिक सब जहाँ समादृत, तोषित,
वहाँ बरसता रहता अविरत अन्न, दूध, मधु, सोना।
शासक, चिन्तक जहाँ न रहते राष्ट्रनीति में सहमत
वहाँ उपद्रव, दैवकोप, विद्रोह, कलह है रोना ॥१२९॥

द्वेष-राग दुर्बलता-वश नृप के यदि प्रजा अरक्षित
कष्ट भोगती विविध परिस्थिति-वश दुष्कृत है करती।
उसका पाप नृपति को भी लगता है, शास्त्र बताते,
पुण्य-निधान क्षितिप वह जिसकी प्रजा अशङ्क विचरती॥१३०॥

शासक गण की, उच्च वर्ग में यश, प्रभाव वालों की
देखादेखी और अनुसरण जनता करती है नित।
अतः शासकों को अपना आचरण विमल है रखना,
देख बड़ों को ही छोटे रहते मर्यादा में स्थित॥१३१॥

यदि न जीविका पा कोई पथ है अवैध अपनाता,
तो उसका है पाप न उसको, लगता भूपति को ही।
करो गोप-माली-सा गो-तरु-तुल्य धरा का पालन,
कामधेनु वह देगी सब धन, बनो धरित्री-दोही॥१३२॥

परम धर्म उपकार, अहिंसा, त्राण, दया, प्रतिपालन,
और क्षितिप को ही मिलता सर्वाधिक इस का अवसर।
एक दिवस में ही जितना वह पुण्य पाप कर लेता,
उतना दश हायन-सहस्र में भी न अन्य सकता कर॥१३३॥

शासक यदि धर्मिष्ठ तभी शासित धर्मी हो पाते,
पापी यदि शासक तो वे पापिष्ठ घोर बन जाते।
दस्यु नृपति के सखा, सहायक सचिव दस्यु ही होते,
सज्जन तो सब रंगढंग है देख दूर पछताते॥१३४॥

जो गृहस्थ का यज्ञ, दान, स्वाध्याय, ब्रह्मचारी का,
वानप्रस्थ, संन्यासी का तप पुण्य लोक है देता।
रह असक्त निष्काम प्रजापालन तन, मन, धन से कर
कहीं उच्चतर पद का उससे भूपति होता जेता ।।१३५।।

तम से ज्योति, असत् से सत् की ओर गमन दुष्कर है,
त्याग दुरित आचरण भद्र का नृप से प्रेरित होता।
सफल महीप उतार स्वर्ग को ही धरती पर लाता,
नरक विश्व बनता खल नृप से जन-जन पल-पल रोता ।।१३६।।

दण्डनीति थी लक्ष श्लोक-मय मूल पितामह विरचित,
अयुत-श्लोकमय शिवकृत वैशालाक्ष बना संक्षेपण।
पञ्च-सहस्र-श्लोक वासवकृत हुआ बाहुदन्तक वह,
गुरुकृत वह-त्रिसहस्र-श्लोकमय बार्हस्पत्य गया बन ।।१३७।।

पुनः सहस्र-श्लोकमय उस को किया शुक्र ने रचकर,
आज तुम्हें मैं, हरि-प्रेरित उसका भी सार बताता।
आनृशंस्य, अतिधार्मिकता, ऋजुता न शास्त्रोचित यह,
तज स्वधर्म वनगमन क्लैब्य ही क्षत्रिय का कहलाता ।।१३८।।

मान्धाता, मुचुकुन्द, पुरुरवा, वैन्य, वरुण सा ही बन
ब्राह्म क्षात्र दोनों तेजों का करो लोक-हित अर्जुन,
अस्त्र - बाहुबल भी आवश्यक, अबल तपोबल केवल,
त्याग राज्य का पैतृक होगा क्षात्र-धर्म का वर्जन ।।१३९।।

यह न तुम्हारे पिता पाण्डु ने या माता कुन्ती ने
आशीर्वाद किया, आशङ्का को कदापि तुम से यह।
तर्पण उनका करो, पाण्डु सा सत्य, शौर्य अपनाओ,
हो औदार्य महत्ता तुम में जो कुन्ती में है वह।।१४०।।

भीत, दलित, आक्रान्त, दीन, स्त्री, रुग्ण, वृद्ध, शोषित जन,
शरण प्राप्त कर जिसकी पाएँ न्याय, सान्त्वना, आदर।
बता रहा मैं मर्म धर्म का, सार सभी श्रुतियों का,
पुण्य लोक का अधिकारी उस से न अन्य है बढ़ कर।।१४१।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हो जन्म कर्म से जो भी,
आन्तर बाह्य विपद् से करता यदि वह जन-संरक्षण।
तो मनुष्य वह पूज्य, बन्धु मानवता का, अवतारी,
किया लोक-हित दुष्कृत, वध भी सुकृत कहाता तत्क्षण।।१४२।।

जो राजा, या राज-पुरुष का किसी दोष आ कहता,
रह निष्काम स्वयं उसके प्रति क्रोध न, प्रेम उचित है।
कोसलपति से मुनि कालकवृक्षीय ने कहा जिस विधि,
जिसे न ऐसा अप्रिय-पथ्य का वक्ता वह वञ्चित है।।१४३।

किन्तु बृहस्पति ने सुरपति को मन्त्र महार्घ दिया था,
मधुर सान्त्वना पूर्ण वचन है अमृत, रत्न त्रिभुवन में।
नहीं शत्रु को भी कदापि मारे कटु-गिरा-कशा से,
बने न कण्टक कभी किसी का, सोचे अहित न मन में।।१४४।।

ब्राह्मण चार, आठ क्षत्रिय, इक्कीस वैश्य हो सांसद,
तीन शूद्र प्रवयस्क, सूत भी एक मन्त्रि-मण्डल में।
परामर्श कर गुप्त सबों से इन कोई निर्णय लें,
अज्ञ, बाल, लोभी, स्वार्थी कोई न रहे इस दल में।।१४५।।

तप शरीर-शोषण न, किन्तु अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा,
ब्रह्मचर्य, अस्तेय, दया, धृति, क्षमा, शौच, शम, दम है।
स्रुवा-चित्ति, घृत चित्त, पवित्री ज्ञान, हवन के आन्तर,
मृत्यु जिह्मता, ऋजुता ही सुरता यह तत्त्व परम है।।१४६।।

यदुओं के ज्यों कृष्ण, तुम्हीं त्यों कुरुओं के नायक हो,
अमहापुरुष, अनात्मा से ढोया न महाधुर जाता।
वहन भार का गुरु भी कर लेते सब वृष समतल में,
गिरिपथ में सर्वत्र गिरिश को नन्दी ही पहुँचाता।।१४७।।

रहे ग्रामणी, दशप, विंशतिप, शतप, सहस्रप क्रम से,
ग्राम, उपनगर, पुर, जनपद इस विधि से राष्ट्र विभाजित।
क्षेम-योग जा जा सब के उच्चतर अधिप या मन्त्री,
देखे, सतत व्यवस्था ऐसी, हो सर्वत्र विराजित।।१४८।।

ज्यों पुष्पों से मधुप, वत्स गौओं से भोजन लेते,
त्यों कृषकों, वणिकों से भूप सहर्ष उचित कर पाए।
राज-कोष को प्रजा कोष ही नृप विपदा-हित समझे,
दस्यु-तुल्य याचनक अकारण घर न किसी के जाए।।१४९।।

जहाँ शील रहता है; रहती वहीं सदा राजश्री,
लक्ष्मी-सुत मद, काम किन्तु करते अधर्म प्रोत्साहित।
धावक ज्यों धोता पट का मल, दण्ड नीति से नृप को
उसी भाँति हरना अशील-मल सब वर्णों का है नित ॥१५०॥

दीनों, अबलों को मत कोई कभी सताने पाये,
अश्रु जला देते अबलों के नृप का कुल निःसंशय।
लोर पोंछ जो हर्षित करता उन्हें, धन्य वह नृप है,
भूप-महातरु का ही लेती है खग-जनता आश्रय ॥१५१॥

दुर्जन-संगति-दूषित-मति हो बने, स्थाणु, पत्थर से,
गुरु, गुरु-सुत, कृप ने मैंने संमुख देखे सब दुष्कृत।
सुख-सुविधा-विक्रीत, न हमने पक्ष पाप का छोड़ा,
दण्ड इसी का मिला क्रूर, तुम अतः न होओ दुःखित ॥१५२॥

कर्म, वचन, मन से नृप रक्षा करे निखिल भूतों की;
क्षमा करे अपराध न गुरु, पत्नी, सोदर्य, तनय का।
गुप्तचरों से रखे दृष्टि सर्वत्र सहस्र-नयन हो,
द्वेष, राग तज करे अन्त यम सा सर्वदा अनय का ॥१५३॥

प्रसू, पिता, गुरु, नृप, समाज पाँचों शुचि, जन-वत्सल हों,
मानव-संसाधन-विकास है तभी पूर्ण हो पाता।
इस पञ्चक में से होता असमर्थ, विकृत यदि कोई,
तब विचार, आचार शुद्ध, सन्तुलन धर्म ही लाता ॥१५४॥

स्वयं तृषाकुल भूप बुझाये, तृषा प्रजा की कैसे ?
अपना मन जीता न, प्रजा का जीतेगा कैसे मन ?
जो जनता का सेवक, जनता उसे मानती स्वामी,
वीतराग, निःसङ्ग तुम्हीं सा है नृपता का भाजन ।।१५५।।

विद्या, बल, धन, ज्ञान, भक्ति, शुभचिन्तन, मनन, वचन से,
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का सेवा-कर्म वृहत्तम ।
राष्ट्र, पिता, माता, गुरु, रोगी, क्षिति, समाज की सेवा,
मारुति-कृत रामावतार की सी निष्काम महत्तम ।।१५६।।

स्यार, गीध, कुत्ते, कौए टूटते अर्ध-मृत पर भी,
कहीं रखो शर्करा पहुँच ही है पिपीलिका जाती ।
लोभ-दास प्रत्येक राज-पर-धन पर है मंड़राता,
सब शुचिता से बड़ी अर्थ-शुचिता ही है कहलाती ।।१५७।।

जीभ, आँख, त्वक्, नाक, कान के पड़े लोभ में फँस सब
मीन, शलभ, गज, अलि, मृग कटु फल एकेन्द्रिय-वश पाते ।
स्पर्श-रूप-रस-गन्ध - शब्द लोभी पञ्चेन्द्रिय - परवश,
तज विवेक, धृति नर भी तिर्यक् सा रोते पछताते ।।१५८।।

लुभा, डरा, अज-मेष-गो-महिष बना दूहता सब को,
कभी न वह अज मेष महिष गोपाल, नृपाल कहाता ।
अनासक्त ही धर्मनिष्ठ नर पात्र राज्य का तुम सा,
भूपालन निष्काम स्वयं तप है कठोर बन जाता ।।१५९।।

दे उत्कोच, खिला मादक, धन-जन लुटवा, वध करवा,
उल्लू बना प्रजा को ढोंगी छीन नृपासन लेता।
रक्त जोंक सा चूस राष्ट्र का, चूहों सा कर संचय,
चखता पञ्च मकार कुण्ठमति जनता को दुख देता ॥१६०॥

सत्य, धर्म की ही होती है विजय अन्त में निश्चित,
राहु, दशानन, कालनेमि का अन्त उधड़ हो जाता।
नहुष, त्रिशङ्कु, सगर-तनयों का कटु परिणाम सुपरिचित,
काम, क्रोध, मद लोभ विपद् लाते, इतिहास बताता ॥१६१॥

सद्-गृहस्थ का सूना-पञ्चक यथा नान्तरीयक है,
सुनृप-राज्य भी त्यों ही होता क्षमा-दण्ड-द्वय-मिश्रित।
कूटनीति का दाक्ष साक्ष्य सब मिटा धृष्ट अघ करना,
अभय, सुसचिव-सहाय नृपति रहता नित इससे अवहित ॥१६२॥

साम काम्य, आवश्यक पर है क्वचित् दण्ड भी स्वीकृत,
उचित-परिस्थिति-चयन मनीषा-हृदय-कार्य नृप जन का।
दण्डित करती चलने पर प्रतिकूल प्रकृति पद-पद में,
दो चरणों से ही होता चलना संभव शासन का ॥१६३॥

व्यास, भीष्म, हरि के समझाने से अजातरिपु,
समझ स्वधर्म नृपति का, क्षत्रिय का धर धीरज।
लगे पङ्क में पङ्कज सा रह करने शासन,
प्रणत पदों में हो, ले आशीर्वाद, मोह तज ॥१६४॥

राम-राज्य-प्रतिरूप युधिष्ठिर-राज्य बना दृढ़,
युद्ध-भग्न भारत का नव निर्माण हुआ फिर।
भरे घाव उर-उर के जन-कल्याण-राज्य पा,
जनता में सुख, शान्ति, प्रगति, सन्मति लौटी स्थिर ॥१६५॥

भूपति हैं धृतराष्ट्र स्वयं, युवराज मात्र मैं,
जनता में कर दिया युधिष्ठिर ने यह घोषित।
तोषित गान्धारी, धृतराष्ट्र हुए पूर्वाधिक,
इस पवित्र शासन में कोई रहा न शोषित ॥१६६॥

भरत-खण्ड में संस्थापन कर धर्म-राज्य का।
परित्राण सज्जनों, दुर्जनों का विनाश कर।
कर पूरा अपना पण, ले अपनों की अनुमति,
लौटे सात्यकि-सहित कृष्ण द्वारकापुरी, घर ॥१६७॥

पर अर्जुन के सदृश युधिष्ठिर के भी मन में,
देख समझ सब बात यही रह-रह आ जाती।
देश काल-सापेक्ष असत्-सत् क्या न सनातन?
बिना गरल, तम, सुधा, ज्योति रह कभी न पाती? ॥१६८॥